प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स,
बुक्सेलर्स एण्ड पब्लिशर्स,
बनारस सिटी।

मुद्रक—
महादेव प्रसाद,
अर्जुन प्रेस,
कबीर चौरा, काशी।

अवतारवाद मीमांसा

अवतार क्या है।

जब से स्वामी दयानन्दजी ने प्रचलित अवतारवाद का खण्डन करके ईश्वर के अवतार न होने का उपदेश दिया है तभी से अवतारवादियों की मण्डली में बड़ा हलचल मचा हुआ है। अवतारवादियों ने ईश्वर के अवतार को वेदादि से सिद्ध करने का अनवरत प्रयत्न किया और अब भी वे बराबर करते जाते हैं। इस समय हिन्दू समाज इस प्रकार दो दल में विभक्त हो गया है। एक अवतारवादी दूसरा अनवतारवादी। एक अपने पक्ष को वेद से मण्डन करता है दूसरा उसी वेद के प्रमाण से उसका खण्डन करता है।

ऐसी दशा में साधारण जनता का यह निर्णय करना कठिन होजाता है कि किसकी बात सत्य मानी जाय और किसकी बात असत्य मानी जाय। क्योंकि दोनों वेद का प्रमाण देते हैं इसका कारण स्पष्ट है। वेद के अर्थ करने में साधारण जनता को तो छोड़ दीजिये बड़े २ संस्कृत के विद्वान चक्कर में पड़ जाते हैं। कारण यह है कि वेद की भाषा वर्तमान संस्कृतभाषा से भिन्न है। वर्तमान संस्कृतभाषा वेदभाषा का रूपान्तर है।

वेदभाषा से वर्त्तमान संस्कृतभाषा निकली है ! इसी लिये इसका नाम संस्कृतभाषा है । पहले इसका नाम देवभाषा देववाणी था परन्तु अब सब एकही समझा जाता है ! परन्तु इसे कभी भी न भूलना चाहिये कि केवल संस्कृत-भाषा का आचार्य या काव्यतीर्थ या व्याकरणाचार्य पास कर लेने से ही कोई वेदका पण्डित होगया । उक्त उपाधियों के पास कर लेने पर भी वेद का पर्याप्तज्ञान तब तक नहीं होता जब तक कि वैदिक साहित्य का अध्ययन न किया जाय !

पर आज वैदिक साहित्य के अध्ययन करनेवाले इस भारत वर्ष में कितने पण्डित हैं ? इस काशी में जो संस्कृत विद्या का केन्द्र है, जहां व्याकरण, साहित्य न्याय आदिके पढ़ानेवाले सैकड़ों बड़ेबड़े धुरन्धर विद्वान तथा उन्हीं के विद्यार्थी मिलते हैं, वहां वैदिकसाहित्य के पढ़ाने वाले विद्वान तथा पढ़ने वाले विद्यार्थी मुश्किल से २ । ७ मिलेंगे ? जब वैदिक सा-हित्य के पढ़ने और पढ़ाने वालों की इस काशी नगरी में यह दशा है । तो दूसरे स्थानों की बात करना व्यर्थ है । इसलिये अब संस्कृत के पढ़े लिखे विद्वान भी वैदिक साहित्य के स्वा ध्याय के अभाव से उसके तात्पर्य के समझने में असमर्थ हो जाते हैं तो बेचारी साधारण जनता के विषय में क्या कहा जा सकता है । वह तो इन्हीं संस्कृत विद्वानों का मुहँ ताकती है, और ये संस्कृत के विद्वान पक्षपात के कारण जनता से सत्य को छिपाते हैं इसी से जनता संशयग्रस्त रहती है ।

पर इस संशयसागर से निकलने का मार्ग क्या है? क्योंकि साधारण जनता गूढ़ तत्वों को समझ नहीं सकती और न वह उसकी अधिकारिणी है, पर उसे भी सरल मार्ग से प्रकाश में लाना विद्वानों का एक परम कर्तव्य है। इसी विचार से कालूराम आदि के फैलाये हुये भ्रमको दूर करने के लिये पहले हमें इसी पर विचार करना है कि अवतार क्या है?

अवतार का अर्थ उतरना है। यह अब पूर्वक तृधातु से बनता है जिसका अर्थ उतरना होता है। यह प्रयोग सर्व व्यापक में नहीं घट सकता है। यदि परमात्मा कहीं ऊपर बैठा हो तो अलबत्ता उसका अवतार कहना उचित कहा जा सकता है। परन्तु सर्व व्यापक में इसका प्रयोग करना ही अविद्या और अज्ञान है। असल बात तो यह है कि अवतार के समझने में लोग भूल करते हैं। युधिष्ठिर को लोग धर्म का अवतार कहते हैं तो क्या धर्म कोई ऐसी वस्तु है जिसका अवतार हुआ करता है आजकल भी लोग अत्यंत सत्यवादी धर्मात्मा मनुष्य को धर्म का अवतार कहा करते हैं? जो आदमी बहुत क्रोधी होता है उसे लोग दुर्वासा या यम का अवतार कहा करते हैं। राजा के विषय में मनु संहिता में लिखा है—

इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती॥
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः॥
तस्माद भिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा॥

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कःसोमः सधर्म

राट् । स कुवेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥

अर्थ-इन्द्र, वायु यम सूर्य अग्नि वरुण चन्द्र कुवेर के सार भूत अंशको लेकर राजा बनाया गया । क्योंकि इन देवताओं के अंशों से राजा बनाया गया है इसलिये सब प्राणियों को अपने तेज से वह वश में कर लेता है !

वही अग्नि है वही सूर्य है वही चन्द्र हैं वही यम है वही कुवेर है वही वरुण है वही अपने प्रभाव से महेन्द्र है । अब आप लोग यहां देखते हैं कि पहले श्लोक में तो इन्द्रादिका अंश राजा को बतलाया गया पर अन्त के श्लोक में राजा को साक्षात् इन्द्र अग्नि वायु कहा गया है । क्या सत्यतः वह सूर्य का टुकड़ा है या सूर्य है, अग्नि का टुकड़ा है या स्वतः अग्नि है ? अथवा इसका भाव कुछ और है ?

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि राजा सूर्य या अग्नि या वायु का अंश (टुकड़ा) नहीं है और न वह स्वतः सूर्य वा अग्नि वा वायु है जैसा कि श्लोक में कहा गया है इसलिये मानना पड़ेगा कि उन सूर्यादिकों के गुणों का आक्षेप राजा में करके राजाको उनका अंश या तद्रूप वर्णन किया गया है ? जैसे सूर्य अपनी किरणों से प्रत्येक जगह को प्रकाशित करता है उसी प्रकार राजा विद्यादिका प्रसारकर अन्धकारको नष्ट करता है । अथवा सूर्य के समान अपने तेज से सबको अभिभूत करता है इसलिये राजा को सूर्य वा सूर्य का अंश कहा गया है इसी प्रकार वायु

अग्नि आदि के गुणोंके आरोप से राजा को उनका अंश अथवा तद्रूप कहा गया है। इसका भाव यह कदापि नहीं है कि राजा सूर्यादि का अंश होने के कारण स्वतः सूर्यादिका साक्षात् अवतार है किन्तु राजा में सूर्यादि के गुणोंका आरोप करके राजाको साक्षात् सूर्य कहा गया है। यही भाव ईश्वर के अवतार का है। अब आगे चलिये। जिस पुराणसे अवतारवाद की सृष्टि हुई है वह पुराण भी अवतार के मसले में हमारे ही सिद्धान्त का पोषक है।

देवांशः स तु विज्ञेयः यो भवेद् विभवा धिकः।
नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते।
ना देवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुःपृथिवीपतिः॥
इन्द्रादग्नेर्यमाद्‌ विष्णोर्धनदादिति भूपते।
प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम्॥
आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः॥
यः कश्चिद्‌ बलवान् लोके भाग्यवानथ भोगवान्।
विद्यावान्दानवान् चापिसदेवांशः प्रपद्यते॥
तथैवेते समाख्याताः पाण्डवाः पृथिवीपते।
देवांशो वासुदेवोपिनारायणसमद्युतिः॥

अर्थ—जो विभव-(धनबल शक्ति आदि ऐश्वर्य) में अधिक होता है उसे देवांश समझना चाहिये। जो ऋषि नहीं है वह काव्य (मत्र) नहीं बना सकता जो रुद्र नहीं है, वह रुद्र की अर्चा नहीं कर सकता। जो देवका अंश नहीं है वह अन्न

नहीं देता, जो विष्णु का अंश नहीं वह राजा नहीं होता। इन्द्र अग्नि यम विष्णु कुबेर से प्रभुता प्रभाव कोप और पराक्रम को लेकर राजा का शरीर बनाया जाता है। जो कोई संसार में बलवान भाग्यवान भोग्यवान विद्यावान और दानवान होता है वही देवका अंश कहा जाता है। इसी तरह पाण्डव लोग भी देवों के अंश कहे गये हैं। नारायण के समान तेज रखने के कारण वासुदेव (कृष्ण) भी देवके अंश कहे जाते हैं।

पाठकों! अब आप इसपर थोड़ा विचार करें कि ईश्वर का अंश कौन कहा जाता है? जो संसार में वैभवशाली होता है जिसकी वाणी तथा पराक्रम से संसार में क्रान्ति मच जाती है वह ईश्वर का अंश कहा जाता है। इसी प्रकार जो अधिकबल वान विद्यावान दाता भाग्यशाली होता है वही ईश्वर का अंश समझा जाता है। श्री कृष्ण भगवा न भी इसी प्रकार नारायण के समान कान्ति रखने के कारण ईश्वर के अंश कहेजाते हैं इससे स्पष्ट पता चलता है कि पुराणों में अवतार उसीको माना है जो ऐश्वर्य शाली हो, बलवान हो। फिर चाहे वह बल शारीरिकहो चाहे मानसिकहो चाहे आध्या-त्मिक हो। भगवान कृष्ण भी ऐसेही योग्य होने के कारण ईश्वर के अवतार पुराणों में कहे गये परन्तु वे स्वतः ब्रह्म न थे। दे० भा० स्कन्ध ६० अ० १

गीता भी इसी बात का प्रतिपादन करती है। यद्यद्‌ विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा

ऐसे ही देवी भगवत में कहा गया है (अ० २८ स्कन्ध ६)

यद्यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जित मेवच।

तत्तदेवावगच्छत्वं पराशक्त्यंशसंभवम्॥

संसार में जितने प्राणी ऐश्वर्यवान् हों, श्रीमान और उन्नत हों उन सबको भगवान का अंश समझना चाहिये।

इन उक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि इस प्रकार के लाखों का अगणित अवतार संसार में हुये हैं और होंगे पर वे ईश्वर नहीं हो सकते। इसी सिद्धान्त को लेकर राम, कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, परशुराम, व्यास आदि महानुभावों को पौराणिकों ने अवतार माना है। और यदि सूक्ष्मतया विचार किया जाय तो उन सम्पूर्ण महानुभावों के चरित्रों से, जो अवतार माने गये हैं, यही निश्चय भी होता है। क्योंकि राम और कृष्ण आदिमें जो हिन्दूधर्म के अन्दर अवतारों में मुख्य माने जाते हैं ईश्वर लक्षण कभी नहीं घट सकते। उत्तम कोटि के जीव थे। उक्त पुराण के प्रमाण से भी हमारे कथन की पुष्टि होती है। पर लोग हमारे इस कथन को तब तक ठीक न मानेंगे जब तक मैं अपने पक्ष की पुष्टि में पर्याप्त प्रमाण न दूं। पुराणों में राम और कृष्ण आदि जिस विष्णु के अवतार मानेगये हैं, पहले उसी विष्णु की असमर्थता अल्पज्ञता का दिग्दर्शन कीजिये आपको मालूम हो जायगा कि पौराणिक रामकृष्णादि को जिस विष्णु का अवतार मानते हैं वे स्वयं परतंत्र हैं। दे०

भा० स्क०१ अ० ४ विष्णु को ध्यान में तत्पर देखकर ब्रह्माने पूछा कि आप किस का ध्यान कर रहे हैं। मैं तो आपको ही आदि कारण मानता हूं आपसे ही मैं पैदा हुआ हूं और शिव भी आप की ही आज्ञा से संहार करते हैं तब विष्णु बोले—

जगत्संजनने शक्तिः त्वयि तिष्ठति राजसी।
सात्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्तिता ॥४७॥
तया विरहितस्त्वन्न तत्कर्मकरणे प्रभुः।
नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापिशंकरः॥ ४८ ॥
तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो।
प्रत्यक्षेच परोक्षेच दृष्टान्तं शृणु सुव्रत ॥४९॥
शेषे स्वपिमि पर्यंके परतंत्रो न संशयः।
तदधीनः सदोतिष्ठे काले कालवशं गतः॥ ५० ॥
तपश्चरामि सततं तदधीनोस्म्यहं सदा।
कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथा सुखम् ॥५१॥
कदाचिद्दानवैः सार्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम्॥
यदिच्छापुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे ॥५२॥
कच्छपः कोलसिंहश्च वामनश्च युगे युगे।
न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषुसंभवः॥
नाभवं स्वेच्छया वाऽसवाराहा दिषुयोनिषु ॥५७॥
विहाय लक्ष्म्या सह संविहार कोयाति
मत्स्यादिषुहीनयोनिषु शय्यां च मुक्त्वा
गरुडासनास्थः करोति युद्धं विपुलं स्वतंत्रः॥ ५८ ॥

पुरा पुरस्तेऽ ज शिरोमदीयं गतंधनुर्ज्यास्खलतात्क्वचापि ॥
त्वया तदा वाजि शिरोगृहीत्वा संयोजितं शिल्पि वरेण भूयः॥५९
हयाननोहं परिकीर्तितश्च प्रत्यक्षमेतत्तवलोककर्तः ।
विडम्बनेय किललोकमध्ये कथं भवेदात्मपरोयदिस्याम् ॥६०॥
तस्मान्नाहं स्वतंत्रो स्मिशक्त्याधीनो स्मिसर्वदा ।
तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरन्तरम् ॥ ६१ ॥

देवी० भा० स्कन्ध १ अ० ४

अर्थ—सृष्टि के उत्पन्न करने में तुममें राजसी, मुझमें सात्विकी और शिवमें तामसी शक्ति है । उसके बिना हमलोक कार्य करने में असमर्थ हैं । मैं शेष पर सोता हूं अतः परतंत्र हूं इसमें कोई संशय नहीं है । मैं उसीके अधीन रहता हूं । समय पर सदा उठता हूं तप करता हूं और सदा उसके अधीन हूं । कभी तो लक्ष्मी के साथ सुख पूर्वक विहार करता हूं कभी दानवों के साथ संग्राम करता हूं । संसार में तिर्यग्योनि में पैदा होना कोई नहीं पसन्द करता । मैं अपनी इच्छा से वारा हादि योनियों में नहीं गया । लक्ष्मी के साथ विहार छोड़कर मछली इत्यादि की हीन योनि में कौन जावेगा पहले तुम्हारे सामने ही मेरा शिर धनुष की डोरी से कट गयाथा, तुमने ही घोड़े का शिर लाकर लगाया तबसे मैं संसार में हयानन (घोड़मुहाँ) प्रसिद्ध होगया । संसार में यह मेरी विडम्बना नहीं तो क्या है? यदि मैं स्वतंत्र होता तो कभी ऐसा होता? इसलिये मैं स्वतंत्र नहीं हूं किन्तु शक्तिके अधीन हूं । उसी शक्ति का मैं सदा ध्यान करता हूं ।

पाठक विचार करके देखें कि ये सब लक्षण जीवात्मा के हैं या परमात्मा के ? परमात्मा दुःख सुखसे परे और जीवात्मा दुखसुख का भोक्ता है क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेषः ईश्वरः ॥योग०॥ जो विष्णु इस प्रकार अपने मुँह से अपनी अशक्तता, अस्वतंत्रता दुःख आदि वर्णन करता है वह जीवात्मा के सिवाय और क्या हो सकता है ? इतना ही नहीं विष्णु अपने मुख से अपना जन्म भी वर्णन करते हैं। देवी भा० स्कन्ध ३ अध्याय ३

सैषा वरांगना नाम या दृष्टो वै महार्णवे ।
बालभावे महादेवी दोलयन्तीव मां मुदा ॥ ६३ ॥
शयानं वटपत्रे च पर्यंके सुस्थिरे दृढ़े ।
पादांगुष्ठ करे कृत्वा निवेश्य मुखपंकजे ॥ ६४ ॥
लेलिहानं च क्रीडन्तं अनेकैर्बाल चेष्टितैः ।
रममाणं कोमलांगं वटपत्र पुटे स्थितम् ॥ ६५ ॥
कामंनो जननी सैषा शृणुतं प्रब्रोम्यहम् ॥
अनुभूतं मया पूर्वं प्रत्याभिज्ञा समुत्थिता ॥ ६६ ॥

विष्णु महाराज, ब्रह्मा और शिवसे कहते हैं। महार्णव में जिस स्त्री को हमने देखा, जो देवी लड़कपन में पैर के अंगूठे को हाथ में पकड़ कर और उसे अपने मुख में डालकर वटपत्र पर सोये हुये मुझको झुला रही थी। वही हमारी माता है !

पाठक वृन्द, अब आप ही निर्णय कीजिये विष्णु में

ईश्वर के गुण घटते हैं या नहीं? जैसे छोटे छोटे लड़के जब वे पैदा होते हैं, पालने पर झुलाये जाते हैं। वे स्वभावतः अपने अंगूठे को मुंह में डाल कर चूसते हैं ठीक वही दशा विष्णु की थी जब वे पैदा हुये थे। इस कथासे वे आदि सृष्टि के मनुष्य कहे जा सकते हैं न कि ईश्वर।

विष्णु औरत बन गये

विष्णु ने कहा। हम तीनों ब्रह्मा विष्णु और महादेव ने देवी की स्तुति की और कहा कि हम लोग सृष्टि कैसे करें। सर्वत्र पानी ही पानी है। हम लोग सृष्टि करने में अशक्त हैं। यह सुन कर देवी विमान पर चढ़ी हुई आई। उसमें हम लोगों को चढ़ा कर आकाश में विमान को उठाया। हम लोगों ने विमान पर से नीचे देखा तो कहीं भी जल न था वहां पर पृथ्वी दिखलाई दी। जहां पर वृक्षों में फल लगे थे, कोकिल बोल रहे थे। पर्वत बन उपवन नारी पुरुष पशु नदी वापी कूप तड़ाग झरना झील देखा और आगे एक नगर देखा जिसमें अच्छे अच्छे मकान बने थे ऐसे पुर को देख कर हम लोगों ने समझा कि यह स्वर्ग है। और विचार किया कि किसने इसे बनाया। तदनन्तर विमान दूसरे स्थान पर आया। वहां पर कुबेर यमादि सम्पूर्ण देव मिले। वहां से ब्रह्म लोक में गये और वहां ब्रह्मा को देख कर हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वहां से कैलाश शिखर

पर विमान आया वहां शंकर मिले । उन्हें देख कर सब विस्मित हुये । वहां से विमान चला और क्षीर सागर में पहुंचा । विमान पर से ही हम लोगों ने एक कुमारी नव-योवना रमणी को पर्यंक पर बैठे देखा । वह अत्यन्त सुन्दर थी । उसके हजार नेत्र हजार शिर और हजार मुँह थे । हम लोग विमान से उतर कर द्वार पर गये । देवी ने हम लोगों को स्त्री बना दिया । हम लोग सुरूपा युवती बन गये । वहां १०० वर्ष बीत गये । हम लोगों ने देवी की स्तुति की । देवी ने हमें महालक्ष्मी, ब्रह्मा को सरस्वती और शिव को महाकाली सहचारिणी दी । जब हम लोग वहां से हटे तो हम लोग पुनः पुरुष बन गये और हमलोग फिर उसी जगह वापस आये । प्रकृति जड़ है, ईश्वर के सामीप्य से उसमें चेतनता है वह प्रकृति जीवों के समान, ब्रह्मादि को भी नाच नचाती है यह ऊपर के प्रमाण से सिद्ध हो चुका, तब जीवात्मा और ब्रह्मादि में क्या अन्तर रहा ? दोनों प्रकृति के गुणों के वशीभूत हो कर दुःख और सुख उठाते हैं, इनसे भिन्न कोई अन्य ही परमात्मा सिद्ध होता है, ऐसी दशा में, पुराण के आधार पर से ही, हम जोर देकर बलपूर्वक कह सकते हैं कि ब्रह्मा विष्णु महादेव ईश्वर नहीं । किन्तु मनुष्य विशेषहैं जो बड़ेही प्रभाव-शाली थे । परन्तु उक्त आधार के बल से पौराणिक विष्णु को हम ईश्वर नहीं कह सकते ।

ऊपर का प्रमाण है । ३ स्क० अ० ३ से अध्याय ६ तक ।

जिस देवी ने विष्णु को नाच नचाया वह देवी कौन है? इसका निर्णय भी स्वयं देवी करती है।

नाहं पुरुष मिच्छामि परमं पुरुषं विना।
तस्येच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत्॥
समां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिःशिवा।
तत्सान्निध्य वशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्॥
जडाहं तस्य संयोगात् प्रभवामि सचेतना॥

अर्थ—मैं परम पुरुष को छोड़ कर अन्य की इच्छा नहीं करती। हे दैत्य उसी की इच्छा से मैं सम्पूर्ण जगत को उत्पन्न करती हूँ वह मुझे देखता है और मैं उसकी प्रकृति हूँ। उसीकी समीपता से मुझ में चेतना रहती है। मैं जड़ हूं उसी के सान्निध्य से मैं चेतन होती हूं इत्यादि॥

अब पाठकवृन्द विचार कर देखें कि ब्रह्मा विष्णु तथा शिव ये तीनों प्रकृति के आधीन हैं। प्रकृति इन्हें जैसा नाच नचाती है वैसा वे नाचते हैं?

विष्णु का शिर कटना

स्कन्ध १ अध्याय ५ दे० भा०

एक बार विष्णुजी दश हजार वर्ष तक युद्ध करने के बाद श्रान्त हुये और समस्थल पर पद्मासन मार कर धनु-ष्कोटि पर भार देकर निद्राग्रस्त हुये। उसी समय सब देव यज्ञ करने को तैयार हुये। वे वैकुण्ठ में गये वहां विष्णु को

न पाकर ध्यान योग से उनका पता पा गये। वे विष्णु के पास पहुंचे परन्तु उन्हें निद्रित देख कर विचार करने लगे कि वे किस तरह जागेंगे। ब्रह्मा ने वम्री नाम का कीट उत्पन्न किया और उससे धनुष की डोरी काटने के लिये कहा। उसने कहा मैं आपका काम कर दूंगा तो आप क्या दीजियेगा। ब्रह्मा ने कहा तुम्हें यज्ञ में भाग मिलेगा। उसने डोरी काट दी और विष्णु का शिर उस प्रत्यंचे से कट कर न मालूम कहां चला गया। यह देख सब देव लोग चिन्तित हुये। सब विलाप करने लगे। तब ब्रह्मा ने कहाः-

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनोपार्जितं च यत्।
शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं को तिक्रमेत्पुनः॥ ४३॥
देहवान् सुखदुःखानां भोक्ता नैवात्र संशयः।
यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शंभुना पुरा॥
तथैव लिंगपातश्च महादेवस्य शापतः॥
तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणांभसि॥ ४५॥
सहस्रभगसम्प्राप्ति दुःखंचैव शचीपतेः।
स्वर्गाद्भ्रंशस्तथावासः कमले मानसे सरे॥
एते दुःखस्य भोक्तारः केन् दुःखं न भुज्यते॥

अर्थ—काल जो करे उसे अवश्य भोगना पड़ेगा। चाहे वह भला हो चाहे वह बुरा हो, दैवका अतिक्रमण कौन कर सकता है? जो देहवान् होता है वह सुख दुःख का भोक्ता होता है इसमें कोई संशय नहीं है। जैसे कालवश शंभु

ने मेरा शिर काट लिया था और महादेव का लिंग शाप से गिर पड़ा था, वैसेही आज विष्णु का शिर कटकर समुद्र में गिर गया। इन्द्रको सहस्त्र भगकी प्राप्ति हुई। वे स्वर्ग से पतित हुये और मानसरोवर में कमल में वास किया। ये सब दुःख के भोक्ता हैं। दुःख कौन नहीं भोगता है ? अस्तु

देवी के कहने से देवता लोग एक घोड़े का शिर लाये और त्वष्टा नाम शिल्पीको दे दिया। उसने उस सरको विष्णु के सर से जोड़ दिया और विष्णु भगवान जी उठे। इससे उनका नाम हयग्रीव पड़ा।

एक बार विष्णु के पास लक्ष्मी बैठी थीं। उनके मुख को देखकर विष्णु बड़े जोरसे हँसे, लक्ष्मी बड़ी नाराज़ हुईं। और धीरे से कहा कि तुम्हारा शिर गिर जाय। उन्हीं के शाप से उनका शिर कटा था अब आपलोग यहां देखते हैं कि विष्णुजी मर कर जी उठे हैं। वे सुख दुःख के भोक्ता हैं उन्हें भी शुभ अशुभ कर्म का फल भोगना पड़ता है। ये सब लक्षण जीव के हैं या ईश्वर के हैं इसे पाठक स्वयं समझलें। इसमें अधिक बुद्धि लगाने की आवश्यकता नहीं। इस कथा से भी वे जीव विशेष ही ठहरते हैं ईश्वर नहीं।

विष्णु भगवान ब्रह्म का ध्यान करते हैं:— दे० भा० स्कन्द १ अ० ८

ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम्।
विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः॥

कामयमानाः सदा कामं तेभ्यः सर्वदैवहि ।
यजन्ति यज्ञान्विविधान् ब्रह्म विष्णु महेश्वराः ।
तेवैशक्ति परां देवी ब्रह्मा ख्यां परमात्मिकाम् ॥
ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम् ॥

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु महादेव ये तीनो देव निश्चय पूर्वक किसी का ध्यान करते हैं और विष्णु बहुतवर्षों तक उग्र तप करते हैं। यदि कोई इनका स्वामी न होता तो ये क्या उग्रतप करते। ये तीनो देव सदा अपने मनोरथ की पूर्ति के लिये अनेक प्रकार का यज्ञ करते हैं। वे ब्रह्म नामक पराशक्ति की उपासना और ध्यान करते हैं।

यहां पर यह भी स्पष्ट हो गया है, पौराणिक विष्णु पूर्ण काम नहीं, उसे अनेक वस्तुओं की कमी है जिसके लिये ब्रह्माख्य देवी की उपासना करते हैं। इससे स्पष्ट पता लगता है कि ब्रह्मा विष्णु शिव तीनों ही इस पृथ्वी पर रजो-गुणी सतोगुणी और तमोगुणी मनुष्य थे न कि कोई ईश्वर।

विष्णु जरामरण के वशीभूत

देवीभागवत स्कन्ध ४ अ० २

कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः।
अनादिनिधनाः जीवाः कर्म बीजसमुद्भवाः॥
नानायोनिषु जायन्ते म्रियन्ते च पुनः पुनः।
कर्मणारहितो देहसंयोगो न कदाचन॥
ब्रह्मादीनांच सर्वेषां तद्वशित्वं नराधिप॥
सुखदुःखजरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा॥
कामक्रोधौच लोभश्च सर्वे देहगताः गुणाः॥
दैवाधीनाश्च सर्वेषां प्रभवन्ति नराधिप॥
रागद्वेषादयः भावाः स्वर्गे पि प्रभवन्ति हि॥
देवानां मानवानां च तिरश्चां च तथा पुनः॥
विकारा सर्व एव एते देहेन सह संगताः॥
उत्पत्तिः सर्वजन्तूनां विना कर्मन विद्यते॥
मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते॥

अर्थ—सब जीवोंकी उत्पत्ति कर्म से ही होती है इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं हैं। *जीव अनादि है। वह कर्म बीज से उत्पन्न होता है। वह नानायोनि में उत्पन्न और मारता है बिना कर्म के जीवका शरीर के स

* जीव का मरना उपचारार्थ है। यहां शरी के कारण से जीव का जन्ममरण कहा गया

कभी भी नहीं होता ब्रह्मा विष्णु महादेव इत्यादि देवता भी इसके वश में हैं। ये भी सुख दुःख जरा मृत्यु हर्ष शोक काम क्रोध लोभ मोह के वशीभूत हैं। क्योंकि ये सब देह के गुण हैं। राग द्वेष आदि स्वर्ग में भी होते हैं। ये सब देह के विकार हैं। देव मनुष्य पशु पक्षी सबही इसके वशीभूत होते हैं।

पाठको! यहां पर विष्णु आदि देवों का पोज़ीशन पुराणकारने इतना स्पष्ट कर दिया कि इसकी समालोचना करना ही व्यर्थ प्रतीत होता है। इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ये जीवात्मा के लक्षण हैं। ये लक्षण विष्णु आदि देवों में मौजूद हैं अतः विष्णु ईश्वर नहीं जीवात्मा है।

६ठी स्कन्ध के अध्याय ७ में लिखा है कि ब्रह्मा विष्णु और महादेव इस संसार में सदा जन्मते मरते हैं। इनका सदा आवागमन होता रहता है।

ब्रह्मा विष्णु स्तथा रुद्रस्ते चाहंकारमोहिताः।
भ्रमन्त्यस्मिन् महागाधे संसारे नृपसत्तम॥

अर्थ—हे राजन् ब्रह्मा विष्णु और महादेव, अहंकार से अज्ञानी बनकर इस संसार सागर में गोता खाया करते हैं।

अब जो विष्णु अहंकार से मोहित होकर इस संसार सागर में चक्कर काटता रहता है वह सिवाय जीव के और कौन हो सकता है! क्या ईश्वर भी अज्ञानी बन सकता है? यदि हमारे पौराणिक भाई यहां अद्वैत सिद्धान्त ले बैठें तब

भी तो अवतार सिद्धि में गड़बड़ी ही रहेगी। क्योंकि इस सिद्धान्त से तो जीवमात्र ब्रह्मही हैं फिर अवतार कैसा? शरीर से सम्पर्क होते ही शरीर के धर्म उसमें आ जाते हैं फिर वह जीव ही रहा कि ईश्वर?

लोग यह ख्याल करेंगे और पं० कालूराम सरीखे कोई कोई पुरुष यह भी कहते हैं कि ईश्वर का शरीर है, परन्तु वह दिव्य है। पचभूतात्मक नहीं है। परन्तु यह उनकी भ्रान्ति है। उनके विष्णु का शरीर भी पंचभूतात्मक है।

स्कन्ध ४ अध्याय १३ देवी भागवत

अमराणां गुरुः साक्षात् मिथ्यावादी स्वयं यदि।
तदाकः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः॥
हरिब्रह्माशचीकान्तः तथान्ये सुरसत्तमाः।
कामक्रोधाग्नि संतप्ताः लोभोपहतचेतसः॥
छले दक्षाः सुरा सर्वे मुनयश्च तपोधनाः।
इन्द्रोग्निश्चन्द्रमा वेधा परदाराभिलम्पटाः॥
आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद।
वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियानघ।
सर्वलोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा॥

उत्तर

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येवविकारैः संयुतस्तदा॥
रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।

संस्थितास्तत्र कामतः ॥ वैकुण्ठेपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः ॥ गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन् कमलापतिम् ॥

मेरु पर्वत के शिखर पर सब लोक प्रतिष्ठित हैं। वे कौन कौन हैं सो गिनाते हैं। इन्द्रलोक, वन्हिलोक सत्यलोग यमलोक कैलास वैकुण्ठ आदि। अर्जुन इन्द्रलोक में जाकर पांच वर्ष तक वहां रहे थे। उसी प्रकार ककुत्स्थ आदि राजा स्वर्ग लोक में इसी मनुष्य शरीर से गये थे। दैत्य लोग भी इन्द्रलोक को जीतकर वहांपर राज्य करते थे। दानवों से पीड़ित देवलोग भी वैकुण्ठ में जाकर विष्णु की स्तुति करते थे।

देवी भागवत के अनुसार मेरु पर्वत, इलावृतखण्ड में है। अष्टम स्कन्ध के अध्याय तेरह में लिखा है कि इलावृत के दक्षिण में निषद् हेमकूट तथा हिमालय पहाड़ है। इससे सिद्ध है कि भारत के उत्तर इलावृत है और वहीं मेरु पर्वत है। इसलिये अनुमानतः मानना पड़ेगा कि वर्तमान अल्टाई पहाड़ या इसी के आस पास के किसी पर्वत का नाम मेरु रहा हो। इन्द्र के पास पढ़ने के लिये अर्जुन हिमालय पार करके उत्तर की ओर इन्द्र लोक को गये थे इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि इन्द्र विष्णु ब्रह्मा आदि कोई अनादि स्वयं सिद्ध ईश्वर न थे, किन्तु अस्मदादिवत् मनुष्य थे। उनकी देव संज्ञा थी। बड़े प्रभावशाली थे। इनके रहने के लिये मेरुपर स्थान मौजूद ही है। इनके वैकुण्ठ का भी जो मेरु पर्वत पर है, इसी भागवत में वर्णन किया गया है। यथा दे० भा० स्क० ५ अ० ८

सरोवापीं सरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम्।

हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम् ॥
प्रसादै रत्नखचितैः कांचनैश्चित्रमण्डितैः ॥
अभ्रंलिहै विराजद्भिः सयुतं शुभसद्मकैः ॥
गायद्भिर्देवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः ॥
रंजितं किन्नरैः शश्वत् रक्तकण्ठैः मनोहरैः ॥

वैकुण्ठ में तालाब है बावड़ी है, नदियां हैं हंस सारस चक्रवाक गुंजार कर रहे हैं, चम्पा चमेली आदि फूल फूले हुये हैं आकाश से बात करनेवाले रत्नखचित महल बने हुये हैं। देव गन्धर्व किन्नर गा रहे हैं। अप्सरायें नाच रही हैं। मुनिलोग वेदपाठ कर रहे हैं और विष्णुकी स्तुति कर रहे हैं इत्यादि। जब विष्णु को घर है स्थान विशेष में, वह भी इलावृत खण्ड में इसी पृथ्वी पर, तो वह ईश्वर कैसे हो सकता है।

विष्णु का व्यभिचार

जिस प्रकार मनुष्य में सब प्रकार के गुण अवगुण होते हैं उसी प्रकार के गुण अवगुण विष्णु के अन्दर मौजूद पाया जाता है। विष्णु के पारतंत्र्य, सुख दुःख गृह स्थान अज्ञान आदिका वर्णन तो ऊपर आही गया, अब विष्णु के यभिचार का दिग्दर्शन करा दिया जाता है। इससे भी पता चल जायगा कि यह वह विष्णु नहीं जो सर्वज्ञ व्यापक है जिसका वर्णन वेद में है, यह तो वह विष्णु है जो पृथवी पर स्थान विशेष में घर बनाकर रहता है। ऐसा विष्णु जो घर बनाकर

रहता है एकबार नहीं सौ बार जन्म ले और मरे तो क्या, इससे ईश्वर की अवतार सिद्धि नहीं हो सकती । अस्तु, अब कथा सुनिये ।

राजा धर्मध्वज की स्त्री माधवी बड़ी ही कामुकी और रसिका थी दोनों को रति करते करते दिव्य १०० वर्ष बीत गये । उसे गर्भ रह गया और कार्तिक की पूर्णिमा को उसे एक कन्या उत्पन्न हुई । उसका नाम तुलसी पड़ा । जब वह बड़ी हुई तो वह तप करने के लिये बदरिकाश्रम में चली गई । और एक लाख वर्ष तक तप किया । २० हजार वर्ष तक जल और फल खाया, ३० हजार वर्ष तक पत्ता खाकर तप किया' ४० हजार वर्ष तक वायु खाकर तप किया १० हजार वर्ष तक निराहार रहकर तपकिया तब ब्रह्मा जी वर देने को आये । उसने कहा—मैं गोलोक में तुलसी नाम की गोपी थी मैं कृष्ण के साथ छिपकर भोग कर रही थी उसे राधाने देख लिया और शाप दिया कि तू मनुष्य योनि में जन्म ले । इसलिये मैं कृष्ण को अपना पति चाहती हूं । ब्रह्माने कहा सुदामा नामका गोप तुमपर आसक्त था । वह राधिका के शाप से दनुवंश में शंखचूड़ नाम से प्रसिद्ध है । तुम पहले उसकी स्त्री बनो । पश्चात् कृष्ण की स्त्री बनोगी । किस्सा कोताह, विवाह दोनोंका होगया । दोनों का आनन्द से जीवन व्यतीत होने लगा । शंखचूड़ से सब देव लोग हारकर विष्णु के शरण में गये । विष्णु ने उससे उसका कवच दान में माँग

लिया। उसे लेकर वे तुलसी के पास गये और उसके साथ व्यभिचार किया। तब शिव के हाथसे वह मारा गया।

इन सब अवतरणिकाओं के देने का प्रयोजन क्या है? इस का अभिप्राय पाठक समझ गये होंगे। अवतारका मसला पौराणिक है। अतः पुराणके विष्णुकापता लगाना आवश्यक था। इनसे यह स्पष्ट पता लगता है कि विष्णु सतो गुणी पुरुष थे। इनके रहने का स्थान भारत वर्षके उत्तर मेरुपर्वत पर था इनको लक्ष्मी सरस्वती, गंगा और तुलसी नामकी चार औरतें थीं ये स्वयं ईश्वर की उपासना करते थे। ये भी माया मोह में फँसे हुए थे। इनका शरीर भी अस्मदादिवत् २५ तत्वों का बना हुआ था। इनमें भी राग द्वेष था। ये भी असत्य बोला करते थे। सक्षेपतः कहने का तात्पर्य यह है कि ये भी मनुष्य ही थे। जैसे आजकल मनुष्य जाति में अनेक भेद हैं, उसी प्रकार उस समय देव और असुर इनमें दो और जातियां थी। विष्णु देव जातिके मनुष्य थे। पौराणिकों ने पीछे से अज्ञानवश उन्हें ईश्वर मान लिया और राम कृष्ण को इन्हींका अवतार मानने लगे।

अवतारों पर एक दृष्टि।

ईश्वर सर्व व्यापक होने से अवतार नहीं लेता क्योंकि अवतार एक देशीय पदार्थ में घटता है न कि सर्व व्यापक में। जिस समय जगत में अधर्म का राज्य हो जाता है,

जनता अत्याचार से ऊब उठती है, दुष्टों का प्रभुत्व बढ़ जाता है, सज्जन सत्यवादी सताये जाने लगते हैं तो परमात्मा की प्रेरणा से उस समय ऐसे मनुष्य पैदा हो जाते हैं जो जनता के संकट को काटने में समर्थ होते हैं। ईश्वर का अर्थ ही समर्थ होता है। राजा को भी ईश्वर इसी लिये कहते हैं कि उसमें साधारण मनुष्यों की अपेक्षा अधिक शक्ति है। पर वह धनवान, या राजा परमात्मा नहीं। इसी प्रकार जो जनता के ऐसे कष्टों को जिसको दूर करने की शक्ति जन साधारण में नहीं होती, अपनी आत्मिक शक्ति द्वारा दूर करने में समर्थ होते हैं, जनता भावुकता से उन्हें ईश्वर तुल्य या ईश्वर मानने लग जाती है। श्रीराम श्रीकृष्ण परशुराम महात्मा बुद्ध इसी लिये अवतार माने गये हैं। पर वास्तव में वे परमात्मा के अवतार नहीं, किन्तु बड़े शक्तिशाली पुरुष थे उदाहरण में आजकल महात्मा गांधी को आप ले सकते हैं। इस प्रकाश युगमें भी सन १९२१ के आन्दोलन में साधारण जनता उनको अवतार मान बैठी और देहातों में उनके नाम पर लपसी पूड़ी चढ़ाई गई थी। जब प्रकाश युग का यह हाल है तो अन्धकार युग का कहना ही क्या है? इस सिद्धान्त का समर्थन पूर्व लेख में किया जा चुका है। एक बात अवतारों में बड़ी विलक्षण मिलती है। बुद्ध को पौराणिक अवतार मानते हैं पर साथ ही उन्हें नास्तिक भी

कहते हैं। यह क्यों? क्या परमात्मा भी नास्तिक होता है? इससे तो हमारे कथन की पुष्टि होती है। जिनको इन्होंने शक्तिमान पाया उसीको इन्होंने अवतार मान लिया। श्रीराम भी अवतार, परशुराम भी अवतार। क्या परशुराम अवतार कमज़ोर था? जो एक अवतार के रहते दूसरे दूसरे अवतार की आवश्यकता पड़ी? और दोनों अवतार परस्पर भिड़ गये। एक अवतार को दूसरे अवतार का ज्ञान ही न था। यदि परशुराम जानते होते कि हम ईश्वर के अवतार हैं और राम भी ईश्वर के अवतार हैं, तो क्या वे उनसे लड़ने को उद्यत होते? उन्हें तो पीछे से ज्ञान हुआ ऐसा रामायण लिखने वाले बाबा तुलसीदास जी लिखते हैं। फिर कैसे माना जाय कि वे ईश्वर के अवतार थे। एक अवतार नरसिंह भी थे जिन्हें महादेव की प्रेरणा से वीरभद्र ने शरभ का रूप धारण कर पटक पटक कर मारडाला ऐसा लिंग पुराण और शिवपुराण में पाया जाता है। पुराण को सबही अवतारवादी ज्यों का त्यों मानते हैं। यहां दो भगवानों में लड़ाई, एक ईश्वर दूसरे ईश्वर को मार डालता है? इन सब बातों को देख कर यही कहना पड़ता है कि पूर्वकाल में पौराणिक काल में जो शक्ति सम्पन्न होता था उसे लोग अवतार मान लेते थे।

जब ऐसे शक्तिसम्पन्न पुरुषों को लोग अवतार मान लेते थे तो उनको ईश्वर का पूरा रूप देने के लिये उनके

साथ अलौकिक घटना जोड़ देते थे जिससे जनता का विश्वास उनके ईश्वरत्व पर से कभी न हटे । हर एक मत-दवों का यही हाल है उदाहरणार्थ मैं अहिल्या और इन्द्र की आख्यायिका पाठकों के सामने रखना चाहता हूं ताकि उन्हें ठीक ठीक पता चल जाय कि पूर्व काल में ऐसे महान पुरुषों को ईश्वर बनाने में ये कहां तक प्रयत्न करते थे।

अहल्या और गोतम ।

श्रीरामचन्द्रमें अलौकिक शक्ति दिखलाकर उनको ईश्वरा-वतार सिद्ध करने के अभिप्राय.से पुराणों में अहल्या की कथा आई है। अध्यात्म रामायण और तुलसी कृत भाषा रामायण में यह कथा एक समान है । इन्द्र अहल्या के साथ व्यभि-चार करते हैं गोतम को मालूम हो जाता है, गोतम अहल्या को प्रस्तर हो जाने का और इन्द्रको सहस्र भग होने का शाप देते हैं, अहल्या पत्थर बन जाती है और रामचन्द्र के चरण रज के स्पर्श से पुनः स्त्री बन जाती है और इन्द्र जब रामको देखते हैं तो सहस्रभग के स्थान में उन्हें सहस्र नेत्र होजाते हैं। परन्तु वाल्मीकीय रामायण में यह कथा भिन्न रूप से लिखी गई है। यहां पर गोतम के शाप से इन्द्र का अंडकोश गिर गया। पीछे से देवताओं के कहने पर पितृदेवों ने मेष के अण्डकोष को निकल कर इन्द्र के अण्डकोश के स्थान में जोड़ दिया। अपनी पत्नी को शाप दिया कि "तू यहां सैकड़ों

वर्षों तक वास करेगी। भस्म पर लेटना पड़ेगा वायु भक्षण करके निराहार तप करना पड़ेगा और इस आश्रम में कोई पुरुष तुझे देख न सकेगा (श्लोक २६।३०)। जब रामचन्द्र आवेंगे तब तू पवित्र हो जावेगी। ऐसा कहकर वे हिमालय पर तप करने चले गये। रामचन्द्रजी उस आश्रम में गये और अहल्या के दोनों चरणों को प्रसन्नता से पकड़ लिया। उसने रामजी का आतिथ्य किया और फिर गौतम के साथ चली गई। यही कथा पद्म पुराण अ० ५१ में और ही प्रकार से है। यहां पर पत्थर हो जाने का शाप नहीं है किन्तु हड्डी चमड़े से युक्त मांसरहित, नखहीन बहुत दिन तक वहीं पड़े रहने का शाप दिया ताकि लोग देखें।

अस्थिचय समाविष्टा निर्मांसा नखवर्जिता।
चिरंस्थास्यसि चैकापि त्वां पश्यन्तु जनाः स्त्रियः ॥३३॥

श्रीरामचन्द्र को देखते ही वह पुनः पूर्ववत् हो गई और इन्द्र के सहस्रभग देवों की कृपा से सहस्रनेत्र बन गये। यही कथा ब्रह्म पुराण के गौतम महात्म्य खण्ड अ० १६ में औरही प्रकार है *यहां पर मुनि ने अहल्या को नदी हो जाने

*भगप्रीत्या कृतं पापं सहस्र भगवन् भव।
तामप्याह मुनिःकोपात् त्वंच शुष्कनदीभव॥
यदातु संगता भद्रे गौतम्या तरिदीशया।
नदी भूत्वापुन रूपंप्राप्स्यसे प्रिय कृत्मम॥
अहल्या संगमे तीर्थे पुण्ये स्नात्वा शचीपते।
क्षणान्निधूर्त पापस्त्वं सहस्राक्षो भविष्यसि॥

का शाप दिया और कहा कि जब गौतम नदी से तेरा संगम होगा तो तू पुनः अपने रूप को प्राप्त करेगी। और इन्द्र से कहा कि अहल्या संगम तीर्थ में जब तुम स्नान करोगे तो तुम निष्पाप होकर सहस्र नेत्र हो जाओगे।

अब पाठक उक्त कथाओं पर ध्यान दें। किस प्रकार कथाओं में भिन्नता है? यदि यह कथा सत्य होती तो सर्वत्र एक समान वर्णन पाया जाता परन्तु हरएक स्थल में भिन्नता होने के कारण यह कथा ही आलंकारिक है। किसी के शाप से स्त्री न तो पत्थर हो सकती है और न किसी को हजार भग हो सकते हैं न तो कोई औरत नदी बन सकती है। यह सब पौराणिकी माया है जिसके चक्कर में पड़कर लोग भ्रममें पड़ गये। यह कथा वैदिक ग्रन्थों से ली गई हैं। गौतम नाम चन्द्रमा का है। अहल्या नाम रात्रिका है और इन्द्र नाम सूर्य का है। सूर्य के १२ नामों में से एक नाम इन्द्र है। यथाः- विष्णुपुराण अ० १५ अंश प्रथम में सूर्य के १२ नाम हैं। विष्णु शक्र अर्यमा धाता त्वष्टा पूषा विवस्वान् सविता मित्र वरुण अंशभग॥

तत्र विष्णुश्चशक्रश्च जज्ञाते पुनरेवच।
अर्यमाचैव धाताच त्वष्टा पूषा तथैवच॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चादितिजा आदित्या द्वादश स्मृताः॥

महाभारत आदि पर्व में भी यही लिखा है—

इन्द्रो विवस्वान् पूषाच त्वष्टाच सविता तथा ।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्याः द्वादशस्मृताः ॥ ६ ॥

सूर्य को सहस्र किरण वाला कहा गया है ये ही सहस्र किरणें सूर्य के नेत्र हैं। इस लिये सूर्य ही सहस्रनेत्र है। आदित्योऽजार उच्यते रात्रे र्जरयिता। सूर्य को रात्रिकाजार इसलिये कहा गया है कि वह रात्रि की आयु को नष्ट करता है और अहल्या रात्रि का नाम इसलिये है कि उसमें अह-नाम दिन लय होता है। रात्रिरहल्या कस्मात् अहर्दिनं-लीयते अस्यां ॥ अह-ली-आ। यहां पर रूपकालंकार से चन्द्रमा और रात्रि का पति पत्नी सम्बन्ध बतलाया गया है। चन्द्रमा का रजनीपति नाम प्रसिद्ध ही है। सूर्य के उदय होते ही चन्द्रमा की पत्नी * रात्रि अदृश्य हो जाती है। यही दिन में लीन हो जाना है। यह घटना प्रति दिन हुआ करती है। इस प्राकृतिक दृश्य को भक्तों ने ऐसा रूप दे, दिया कि वह एक सच्ची ऐतिहासिक घटना प्रतीत होने लगी। परन्तु वास्तव में यह कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है। भक्तों ने श्रीरामचन्द्र को अवतार सिद्ध करने के लिये उक्त कथा की रचना की है। आध्यात्म रामायण में अहल्या राम की स्तुति करती है, पर वाल्मीकीय रामायण में राम ही अहल्या

---

*वैदिक साहित्य में पत्नी का अर्थ "पालयित्री शक्ति "होता है। रात्रि में ही चन्द्रमा की शोभा होती है इस लिये रात्रि चन्द्रमा की पत्नी कही गईहै।

की स्तुति करते है दोनों में कितना भेद है । अहल्या के नदी बन जाने में भी यही अलंकार काम करता है । सूर्य का उदय होना मानो अहल्या संगम में सूर्य का स्नान करना है। यही कथा का भाव है । गौतमीतीर्थ के माहात्म्य को दर्शाने के लिये इस कथा की सृष्टि पुराणकारों ने की है। और इस नाम से एक तीर्थ बनाकर उसका माहात्म्य लिख मारा कि इस तीर्थ में व्यभिचारी भी स्नान करने से इन्द्र के समान निष्पाप हो जाता है ।

इस प्रकार एक तीर्थ बनाकर पुराणकार ने जनता में व्यभिचार की उत्तेजना दी । खूब व्यभिचार करो, अहल्या संगम में जाकर गोता लगालो सब पाप दूर । एक स्थान पर इन्द्र को सहस्र भग हो जाने का शाप है तो दूसरे स्थान पर अण्ड कोश के गिर जाने का । एक स्थान पर राम के दर्शन से हज़ारों भगों का हजारों नेत्र हो जाना दूसरे स्थान पर अहल्या संगम में स्थान करने से । इसमें कौन सत्य और कौन असत्य है ? वास्तव में कोई भी सत्य नहीं, राम के अवतार होने और तीर्थ के महात्म्य बढ़ाने के लिये उक्त कथाओं का निर्माण किया गया है । पुराणकारों ने कैसा अन्धकार देश में फैलाया यह बात इन कथाओं से प्रकट है । विना अलंकार के माने उक्त कथाओं की संगति मिलाना टेढ़ी खीर है । पर ज्योंही पौराणिक इस कथाको आलंकारिक मान लेंगे त्योंही उनके अवतारवाद और तीर्थवाद पर बड़ा धक्का लगेगा । परन्तु इसके सिवाय कोई गत्यन्तर नहीं ।

सीताजी की अग्नि परीक्षा

जिस प्रकार अहल्या और गौतम की आख्यायिका को वेद से लेकर सच्ची मानुषिक घटना का रूप दिया गया है और इसके द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी को अवतार बनाने का प्रयत्न किया गया है ठीक उसी तरह से जानकी का खेत में घड़े से पैदा होना तथा लंकाकी अग्नि परीक्षा भी आलंकारिक है। और किसी बात को अलंकार रूप से भाषा में चित्र खींचना कोई अनुचित बात नहीं है परन्तु जनता उसे अन्यथा समझ बैठे तो लेखक का दोष इसमें क्या है। संसार में बड़े लोगों की अग्नि परीक्षा हुआ ही करती है।

राजा हरिश्चन्द्रकी परीक्षा अग्नि परीक्षा नहीं तो क्या है? हरिश्चन्द्र को सत्य से डिगाने के लिये कैसे कैसे प्रलोभन, कैसे कैसे दारुणकष्ट दिये गये परन्तु वे सत्य से न डिगे अ।. यह हरिश्चन्द्र की अग्नि परीक्षा है, इस कथा को भिन्न भिन्न स्थलों में भिन्न भिन्न रूप दिया गया है। कथाओं में परस्पर भिन्नता ही यह सिद्ध करती है कि भिन्न भिन्न लेखकों न उस अग्नि परीक्षा को भिन्न २ मार्ग से लिखा है परन्तु तात्पर्य सबका एकहीहै। माता जानकीको भी वहां ठीक वही दशा थी। १० मास तक वह राक्षसों के बीच रहीं। राम जानते थे कि सीता निर्दोष है परन्तु तो भी सबके सामने उनको कड़ी

कड़ी बातें सुनाईं । जानकी जी ने भी उसका ऐसा उत्तर दिया कि रामजी ठण्ढे पड़ गये । उनसे उत्तर न बन सका उस समय वहां पर उपस्थित जनता को रामचन्द्र की यह बात बहुत बुरी भी लगी । बालमीकीय रामायण पढ़कर देखिये । सीता की बात से लोगों को यह विश्वास होगया कि सीता निर्दोष है । पर कवि इतने पर सन्तोष न करके कुछ और आगे बढ़ता है और सीता को साक्षात् अग्नि में प्रवेश कराता है जो अलंकार मात्र है । क्योंकि रामायण की कथा के विरुद्ध महाभारत में इसी सम्बन्ध की एक कथा आती है जिससे हमारे कथन की पुष्टि होती है ।

वनपर्व अ० २६१

सीता के चरित्र पर सन्देह करके लोकापवाद के डरसे रामचन्द्र ने कहा—हे वैदेही तुम्हे राक्षस के हाथ से छुड़ा कर मैं अपने कर्तव्य का पालन कर चुका अब तुम्हारा जहां जी चाहे वहां जाओ । मुझ ऐसे पतिको पाकर राक्षस के घर में तुम कष्ट न पाओ । कैद में ही रहकर बुड्ढी न हो जाओ इस विचार से मैंने रावण को मारा है । धर्म के मर्म को अच्छी तरह जाननेवाला मुझसा मनुष्य पराये घर में रही हुई पत्नी को पलभर भी अपने पास कैसे रख सकता है ? जानकी तुम्हारा चरित्र चाहे शुद्ध हो चाहे न हो, परन्तु कुत्ते के जूठे किये हव्य की तरह मैं तुमको स्वीकार नहीं कर सकता ।

पाठको! ये कैसे कड़े शब्द हैं, थोड़ा विचार कीजिये अस्तु, अब जानकी जी का उत्तर सुनिये।

हे राजकुमार! आपने जो यह कहा उसके लिये मैं आपको दोष नहीं देती। क्योंकि मैं स्त्रियों और पुरुषों की गति अर्थात् स्वभाव को भली भांति जानती हूं अब मैं जो कहती हूं उसे सुनिये। मनुष्यों के हृदय में रहने वाले सदागति देव वायुदेव अन्तर्यामी होने के कारण सबके हृदय का हाल जानते हैं यदि मैंने मनमें भी किसी प्रकार के पापको आने दिया हो तो वे मेरे प्राणों को नष्ट कर दें। जो मैं किसी प्रकार भी दुराचारिणी होऊं तो वायु जल अग्नि पृथिवी और आकाश ये पचतत्व मेरे शरीरको नष्ट करदें। हे वीर आपके सिवा और किसी को मैंने स्वप्न में भी नहीं याद किया। हे देव आपही मेरे स्वामी हैं देवताओंके कहनेसे आप मुझे ग्रहण करें।

सीता के यों,कहने पर सब लोगों के सामने पवित्र आकाश वाणी हुई जिससे वानरों को आनन्द हुआ। पहले वायु न कहा। हे राघव मैं सदागति वायु हूं। मैं तुमसे सच कहता हूं कि सीता में रत्ती भर भी पाप नहीं है। इसलिये तुम इन्हें ग्रहण करो। फिर अग्निने कहा। हे रघुनन्दन मैं सब प्राणियों के शरीर में रहने वाला अग्नि तुमसे सच कहता हूं कि जानकी में कुछ भी पाप नहीं है। इसके बाद वरुण ने कहा हे राघव सब प्राणियों के शरीर में जो रसका अंश है वह मुझसे उत्पन्न हुआ है।

मैं कहता हूं कि तुम जानकी को ग्रहण करो। तब प्रजापति ब्रह्माने कहा—हे पुत्र तुम राजर्षियों के धर्म का पालन करने वाले और सच्चरित्र हो इसलिये तुम्हारा यों सीता को स्वीकार न करना कुछ विचित्र नहीं है..........मैं नल कूबर को शाप की सहायता से सदा सीता की रक्षा करता रहा हूं पहले कुबेर के पुत्र नलकूबर ने रावण को शाप दिया था कि यदि वह किसी कामनाहीन स्त्री पर बलात्कार करेगा तो उसके सिरके सौ टुकड़े हो जावेंगे इसलिये हे राघव, तुम सीता के बारें में सन्देह न करो उन्हें ग्रहण कर लो!

बस क्या था रामने देवताओं की बात स्वीकार करके सीता को ग्रहण कर लिया और अयोध्या को वापस आये।

पाठको! इस कथा और रामायण की कथा में कितना अन्तर है। इससे क्या यह पता नहीं चलता कि भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न लेखकों ने भिन्न भिन्न मार्ग से माता जानकी की अग्नि परीक्षा लिखी। अतः कथा से मेरे कथन की पुष्टि होती है। जानकी जी आग के भीतर नहीं डाली गई थीं किन्तु जानकी का अग्नि के भीतर डालने की कथा आलंकारिक है।

शिव पुराण पार्वती खण्ड के दूसरे अध्याय में जानकी की माता का नाम धन्या लिखा है। यथा—

भविष्यति प्रियाराधा तत्सुता द्वापरान्ततः।
धन्यासुता स्मृता सीता रामपत्नी भविष्यति ॥ ३८ ॥

इससे पता चलता है कि जानकी खेत में से पैदा नहीं हुई थी इसपर मैं और अधिक प्रकाश नहीं डाल सकता।

अस्तु, अवतार क्या है इस पर यथा शक्ति प्रकाश डाल दिया गया जिन लोगोंने अपने तेज व बलसे जनताका उपकार किया, कालान्तर में वे ही अवतार माने गये। आजकल जिसे हमलोग बहुत बड़ा और प्रभावशाली समझकर महात्मा कहते हैं, पूर्वकाल में ऐसेही महापुरुषों को लोग ईश्वरका अवतार कहते थे। अस्तु,

पाठक इतने ही पर संतुष्ट होकर अब कालूराम जी के पुस्तक की समालोचना पढ़ें।

पं० कालूराम शास्त्री के अवतार

मीमांसा की समीक्षा

पं० कालूराम ने अवतार मीमांसा नाम की एक पुस्तक लिखी है इसमें आपने ईश्वर के अवतार के मण्डन करने का स्वांग रचा है। इसका प्रथम प्रकरण विदेशीय अध्याय है जिसमें आपने यहूदी-मुसलमान ईसाई आदि के ईश्वर को उनकी पुस्तकों पर से साकार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इस लेख में आपने २ पृष्ठ लिख मारा है जिसकी समालोचना करना ही व्यर्थ है हां, इतना अवश्य कह सकते हैं कि कुरान-पुरान बायबिल पुराण के ईश्वर गुण कर्म स्वभाव में परस्पर मिलते हैं। परन्तु उपनिषद्वेदादि उच्चकोटि के ग्रन्थों में

ईश्वर के साकारत्व का खण्डन किया गया है। परन्तु शास्त्री जी उन्हीं ग्रन्थों से ईश्वर को साकार सिद्ध करने की घोषणा देते हैं, इसीलिये आप के प्रमाणों की परीक्षा शास्त्र दृष्टि से करके पाठकों के भ्रम के निवारण के लिये प्रयत्न करूंगा।

आपकी पुस्तक का दूसरा अध्याय तर्का ध्याय है। आपने इसके आरंभ ही में लिखा है कि वेद में ईश्वर साकार और निराकार दोनों प्रकार का कहा गया है। इत्यादि

समीक्षा—यदि निराकारभ्रमाध्याय के स्थान में साकार भ्रमाध्याय नाम रखा जाता तो, आपका उक्त नाम करण उपयुक्त होता क्योंकि निराकार को तो दोनों मानते हैं फिर निराकारत्व में भ्रम कहां रहा? हां साकारत्व में भ्रम है क्योंकि आप कहते हैं ईश्वर निराकार है परन्तु साकार भी है। हम साकार का खण्डन करते हैं, आप उसका मण्डन करते हैं, फिर झगड़ा तो साकार का ही है। निराकार में तो किसी को कुछ भी इनकार नहीं है। इसलिये आपका नामकरण ही प्रमादपूर्ण है जिसका पक्ष स्थापन ही वंचनात्मक है उसकी पुस्तक कहाँ तक सत्य का प्रकाशक हो सकती है? प्रथमग्रासे मक्षिका पातः।

आप कहते हैं कि वेद में दोनों प्रकारकी श्रुतियाँ मिलती हैं उनमें से एक को मानना और दूसरे से इनकार करना आर्य समाजियों की चालबाज़ी है।

समीक्षा—चालबाजी आर्य समाजियों की है, या आपकी,

इसका निर्णय तो हम पाठकों पर छोड़ते हैं। इस समीक्षा को पढ़कर वे इसका पता लगा लेंगे। रह गई दोनों प्रकार की श्रुतियां। इसपर विस्तार पूर्वक विचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसमें कोई शक नहीं कि वेदादि ग्रन्थों में ऐसी श्रुतियां पाई जाती हैं जिसके द्वारा अज्ञानी लोग ईश्वर को रूपवान समझ बैठते हैं। परन्तु यह उनकी बड़ी भारी भूल है।

लोग जानते हैं कि इस शरीर के अन्दर जीवात्मा है। सब काम वही करता है। शरीर के अन्दर मौजूद है। अपनी इच्छा से चाहे जिस अंग से काम ले सकता है। पर क्या उसे कोई शरीर है? घर में या बाहर मरने वाले प्राणियों को लोगों ने देखा होगा। क्या किसी ने जीवात्मा का शरीर देखा है? क्या कोई बतला सकता है कि वह काला या गोरा या लाल अथवा किस रंग का है कदापि नहीं। जब जीवात्मा का ही रूप रंग शकल नहीं, फिर ईश्वर के रूप रंग को बतलाना मूर्खता है या नहीं, इसे पाठक ही विचार लें। जब जीवात्मा का ही रूप रंग शकल नहीं, फिर परमात्मा का रूप कहां से हो सकता है। जिस प्रकार जीवात्मा इस शरीर के अन्दर रहता हुआ इस शरीर में सब क्रियायें करता है, उसी प्रकार परमात्मा के सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में रहने के कारण सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं। यदि कोई कहे कि यह पांच भौतिक शरीर ही जीवात्मा का शरीर है और यदि ऐसा

माना जाय तो वह नाशवान् हो जायगा। क्योंकि यह शरीर तो भौतिक पदार्थों का बना है इसे सब जानते हैं। मर जाता है, फूंक दिया जाता है। पर जीवात्मा कभी मरता नहीं।

ईश्वर को साकार सिद्ध करने का प्रयत्न करना वैसाही है, जैसे वन्ध्या के पुत्र का समर्थन करना। अभी तक तो साकार का मण्डन जब ऋषि मुनियों ने ही नहीं किया तो आप क्या करेंगे? हां हाथ में कलम और कागज़ है, जो चाहो लिख कर अपनी भेड़ों को बहका लो। पर मेरे लेख को पढ़कर कम से कम उनके दिमाग़ में खलबली तो उठ ही जावेगी।

जो लोग कहते हैं कि ईश्वर साकार और निराकार दोनों है उनके लिये एक दलील तो ऊपर दी गई है उसका उत्तर दे देवें। निराकार तो दोनों पक्ष के लोग मानते हैं रह गया साकार। सहस्रशीर्षा आदि श्रुतियों को सामने रख कर आज कल के सनातनी कहा करते हैं कि ईश्वर के साकार और निराकार दो रूप हैं। क्योंकि श्रुतियां साकार और निराकार दोनों की पाई जाती हैं। उनके पाखण्ड के खण्डन के लिये मैं इसी विषय में वेदान्त दर्शन का प्रमाण और शंकर भाष्य उपस्थित करता हूं। जिसका खण्डन कालूराम तो क्या संसार का कोई भी सनातनी नहीं कर सकता। मैं प्रमाण नीचे उपस्थित करता हूं।

न स्थानतोपिपरस्योभयलिंगं सर्वत्रहि

सूत्रार्थ—उपाधियोग से भी परमात्मा का उभयलिंग

(साकार-निराकार) नहीं हो सकता क्योंकि श्रुति में सर्वत्र ही ब्रह्म को निर्विशेष ही प्रतिपादन किया गया है।

शंकरभाष्य-सुषुप्त्यादि में जीव उपाधि के नष्ट हो जाने पर जिस ब्रह्म से मिल जाता है उसका स्वरूप यहां पर श्रुति आधार से किया जाता है। ब्रह्म को प्रतिपादन करने वाली दोनों प्रकार की श्रुतियां पाई जाती हैं यथा-सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः (छां। ३। १४। २) इत्यादि श्रुतियोंमें ब्रह्मका वर्णन सविशेष है। अस्थूल मनरव महृन-स्वमदीर्घम् (वृ०। ३। ८) इन श्रुतियों में ब्रह्म का वर्णन निर्विशेष है। इन दोनों प्रकार की श्रुतियों में क्या ब्रह्म को दोनों प्रकार का सविशेष और निर्विशेष (साकार-निराकार) ग्रहण करना चाहिये अथवा एक प्रकार का। और यदि एक ही प्रकार का माना जावे तो क्या वह सविशेष (साकार) माना जावे या निर्विशेष (निराकार)? इसकी मीमांसा की जाती है। दोनों प्रकार की श्रुतियों की प्राप्ति होने से वह दोनों प्रकारका है ऐसा प्राप्त होने पर हम कहते हैं कि ब्रह्म का दो रूप स्वाभाविक नहीं हो सकता। एकही वस्तु स्वभाव से रूपादि विशेष से युक्त भी हो और रूपादि हीन भी हो इस बातमें परस्पर विरोध रहने के कारण कोई भी इसे मान नहीं सकता। यदि कहो कि पृथिव्यादि उपाधि के योग से साकार निराकार हो सकता है वो भी नहीं हो सकता क्यों कि अस्वच्छ का अभिनिवेश केवल भ्रममात्र है (अर्थात् उसमें

जो अस्वच्छता दीख पड़ती है वह भ्रम है) स्फटिक उज्वल होता है उसको यदि लाल रंग का संयोग हो जाय तो उसका स्वाभाविक रूप तो स्वच्छ ही रहेगा। जो रंगने सेउसमें ललाई दीखती है वह तो भ्रम मात्र है वास्तविक नहीं। इसका कारण यह है कि उपाधि की उपस्थिति अविद्यासे हुआ करती है। इसलिये यदि सविशेष (साकार) और निर्विशेष (निरा कार) वाक्योंमें किसी एकका ब्रह्म स्वरूप निर्धारण के लिये ग्रहण किया जाय तो समस्त विशेषरहित निर्विकल्प(निराकार) ही ब्रह्मको स्वीकार करना पड़ेगा। इसके विपरीत नहीं। क्योंकि ब्रह्मस्वरूप को प्रतिपादन करने वाली "अशब्द मस्प र्शमरूपमव्ययम् इत्यादि श्रुतियों में ब्रह्म समस्त विशेषों से रहित ही उपदिष्ट हुआ है। अर्थात् इन श्रुतियों में ब्रह्म का स्वरूप निराकार ही प्रतिपादन किया है।

यह उक्त सूत्र सिद्धान्त पक्ष का है।

न भेदा दितिचेन्न प्रत्येकमतद्वचनात्

अर्थ—जो तुम कहते हो कि ब्रह्म उपाधियोग से भी दो प्रकार का नहीं हो सकता वह ठीक नहीं है। क्योंकि प्रत्येक विद्या में ब्रह्म का आकार भिन्न भिन्न कहा गया है। कहीं पर ब्रह्म को चतुष्पाद=चार पाद वाला कहा गया है। कहीं पर १६ कला वाला कहा गया है कहीं पर त्रैलोक्य शरीर वैश्वानर शब्द से ब्रह्म कहा गया है। इस लिये ब्रह्मको

निर्विशेष ही नहीं सविशेष भी मानना चाहिये अर्थात् निराकार ही नहीं, साकार भी मानना चाहिये ।

यदि ऐसा कहो तो ठीक नहीं क्योंकि प्रत्येक उपाधिभेद वाक्य ब्रह्मके अभेदको ही बतलाते हैं यथा, "यश्चायमात्मा पृथिव्यां" मिति ॥ वृ० २५ । १ ॥

अर्थात् जो पृथ्वी के भीतर है वही प्राणियों के भीतर है वही सूर्यादि में है इत्यादि । इसलिये ब्रह्म का जो भिन्न भिन्न आकार दिखलाया गया है वह शास्त्रीय नहीं है जो भेद दिखलाई देता है वह ज्ञान प्राप्तिके निमित्त है । उसका तात्पर्य भी ब्रह्म के अभेद में ही है।

अरूपवदेव हितत्प्रधानत्वात् । ३-२-१५

ब्रह्म को रूपादि आकार हीन ही मानना चाहिये, रूपादि वाला नहीं । इसका कारण यह है कि वही अरूपवाली श्रु-तियां प्रधान हैं

प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् । ३-२-१५

जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र का प्रकाश आकाश में फैला रहता है और अंगुली आदि के सम्बन्ध से उसमें टेढ़ापन और सीधापन मालूम पड़ता है यदि अगुंली टेढ़ी करते हैं तो टेढ़ी छाया पड़ती है सीधी करते हैं तो सीधी छाया पड़ती है परन्तु स्वतःप्रकाश में न टेढ़ापन है और न सीधापन । उसी प्रकार प्रकाश के समान ब्रह्म भी पृथिव्यादि की उपाधि के

संयोग से उसी आकार के समान भान होता है परन्तु स्वतः उसमें रूपादि नहीं हैं। उस उपाधि के आश्रय से ब्रह्म के जो आकार विशेष उपदेश हैं वह व्यवहार सौकर्य्य के लिये है। इसमें कुछ भी विरोध नहीं है। इस प्रकार आकार वाली श्रुतियों का व्यर्थत्व नहीं है।

पहले जो यह प्रतिज्ञा की गई है कि उपाधियोग से भी ब्रह्म के दो रूप नहीं होते हैं और यहां पर उपाधियोग मानकर आकारोपदेशिनी श्रुतियों का अवैयर्थत्व दिखलाया गया है इन दोनों में विरोध हो जायगा इस शंका का उत्तर यह है कि निमित्त जिस वस्तुका उपाधि होता है वह निमित्त उस वस्तु का धर्म नहीं होती क्योंकि उपाधि तो अविद्याजन्य है। यह लोक व्यवहार के लिये औपचारिक है पारमार्थिक नहीं।

अब यह प्रश्न हैं कि उसका रूप क्या है। इसका उत्तर अलग सूत्र देता है।

आह च तन्मात्रम्। ३-२-१६

श्रुति रूपान्तररहित निर्विशेष केवल चैतन्यमात्र ब्रह्म का स्वरूप बतलाती है। चैतन्य से भिन्न ब्रह्म का अन्य कोई रूप नहीं है चेतनमात्र ही उसका निरन्तर रूप है।

देवी भागवत् तृतीयस्कन्ध अ० ६ में लिखा है।

वस्तु मात्रं तु यद्दृश्यं संसारे त्रिगुणंहि तत्। दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं न भविष्यति॥ निर्गुणः परमात्मा सौम तुद्दशः कदाचन ॥७०॥

संसार में जितनी चीजें आंख से दिखलाई देती हैं वह सब त्रिगुणात्मक हैं तीनों गुण प्रकृति के हैं, परमात्मा के नहीं वह तो निर्गुण है वह कभी भी आंख से नहीं दिखलाई देसकता।

पाठक अब समझ गये होंगे कि परमात्मा का रूप केवल चिन्मात्र है। वह साकार नहीं है। सत्व रज तम इन तीन गुणों से रूप आता है। लोग इसे जानते हैं कि यह गुण प्रकृति का है। इसलिये जो कुछ दिखलाई देता है जितने लाल पीले हरे नीले आदि रूप हैं वे सब प्राकृतिक हैं। परमात्मा निर्गुण है अतः उसका कोई भी रूप नहीं है। परन्तु कालूराम जी छल कपट करके अपने वाग्जाल से शास्त्रविरुद्ध ईश्वर के दो रूप बतलाते हैं।

"चत्वारिश्रृंगा त्रयोऽस्यपादाः।" इस वेदमंत्र में यज्ञ के चार सींग तीन पाद दो शिर, सात हाथ का वर्णन है तो क्या हमारे आपके शरीर के समान ही यज्ञ के शिर पैर आदि हैं? जिस प्रकार यह औपचारिक वर्णन केवल उपासनार्थ लोकव्यवहार की सुलभता के लिये है उसी प्रकार साकार श्रुतियां औपचारिक हैं पारमार्थिक नहीं।

पद पाताल शीश अज धामा। अपर लोक अङ्गनि विश्रामा।
भृकुटि विलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कचघन माला॥
जासु घ्राण अश्विनी कुमारा। निशि और दिवस निमेष अपारा॥
इत्यादि। रामायण तुलसी०

आप देखते हैं कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में उसी एक व्यापक

निराकार ब्रह्म का फोटो खींचा गया है। क्या आपको कोई पांच भौतिक शरीर दीखता है जिसका पद पाताल आदि हो ? अतः यह औपचारिक उपासनार्थ ही मानना पड़ेगा या इससे भिन्न ?

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधुपश्यति ॥

अर्थ—जहांपर काला लाल २ आंख वाला, पापनाशक दण्ड चलता है वहां की प्रजा मोह को नहीं प्राप्त होती यदि नेता ठीक ठीक उसका प्रयोग करे । मनुस्मृति ॥ क्या दण्ड को भी लाल लाल आंखें होती हैं ? फिर इस वर्णन को देखकर दण्ड को कोई साकार मान लगा ? मानना पड़ेगा कि यह औपचारिक वर्णन है । निरूप में रूप का आरोप किया गया है । अब आगे चलिये ।

ब्रह्माने सोचा कि मैं सृष्टि पैदा करूंगा तो वे कहां रहेंगी ऐसा सोचकर उन्होंने उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम ऊपर नीचे आदि दश कन्याओं को उत्पन्न किया । तब उन्होंने अवकाश माँगा । प्रजापति ने लोकपालों को उत्पन्न करके उनके साथ उन उत्तर दक्षिण आदि कन्याओं की शादी कर दी । वाराह पुराण अध्याय २८ ।। क्या उत्तर दक्षिण दिशायें शरीर धारी हैं जो उनके विवाह का वर्णन पुराण में आया है ? नहीं यह सब औपचारिक वर्णन है ।

ठीक इसी प्रकार ब्रह्म के साकार निराकार प्रतिपादक श्रुतियों में निराकार ब्रह्म ही ग्रहण होता है । साकार वर्णन

औपचारिक केवल व्यवहार सौकर्य्य के लिये कहा गया है। इसलिये कहीं भी वेद में या अन्यत्र यदि परमात्मा के हाथ पैर शिर मुख आदि का वर्णन पाया जाता हो तो उसे उक्त शास्त्र प्रमाणों से औपचारिक ही मानना पड़ेगा। स्वभावतः ब्रह्म तो सर्वथा निराकार ही है।

साकारवादी बृ० २।३।१ का एक श्रुति पेश करके उसके वास्तविक दो रूप होनेका प्रमाण देते हैं उसका भी निराकरण वेदान्त सूत्र से ही कर देना उचित होगा। 'बृ० २।३।१ में लिखा है,

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।

ब्रह्म के दो रूप है मूर्त और अमूर्त। इस पर वेदान्त दर्शन तृ० अध्याय द्वितीय पाद का छठवां सूत्र देखिये।

प्रकृतैतावत्त्वं हि प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः। इस सूत्रपर स्वामी शंकराचार्य्य का भाष्य देखिये। भाष्य बहुत विस्तृत है। भाष्य के अन्त में लिखा है,

कथं हि शास्त्रं स्वयमेव ब्रह्मणो रूपद्वयं दर्शयित्वा स्वय मेव पुनः प्रतिषेधति—प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् इति। यतो नेदं शास्त्रं प्रतिपाद्यत्वेन ब्रह्मणो रूपद्वयं दर्शयति लोकप्रसिद्धं तु इदं रूपद्वयं ब्रह्मणि कल्पितं परामृशति प्रतिषेध्यत्वाय शुद्ध ब्रह्मस्वरूप प्रतिपादनाय चेतिनिरवद्यम्। इति संक्षेपतः।

शास्त्र ब्रह्म का दो रूप स्वयं बतलाकर फिर क्यों प्रति-

द्वेष करता है । कीचड पोत कर धोने की अपेक्षा कीचड़ को न छूना ही अच्छा है । यह शास्त्र ब्रह्म के दो रूपों को प्रतिपाद्य रूप से नहीं बतलाता है अर्थात् ब्रह्म के दो रूपों का प्रतिपादन नहीं किया है । लोक प्रसिद्ध ये दोनों रूप ब्रह्म में कल्पित हैं ऐसा उपदेश प्रतिषेध के लिये ही दिया गया है और ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को प्रतिपादन करने के लिये भाव यह है कि पृथिवी अप तेज वायु आकाश इन भौतिक पदार्थों में वायु और आकाश अमूर्त और शेष मूर्त हैं । चूंकि दोनों में परमात्मा व्यापक है इस लिये उसे उपचार से दो रूप वाला कहा वास्तव में उसका कोई रूप नहीं है ।

पण्डित कालूराम के साकारत्व का निराकरण हो गया । इसके खण्डन के लिये एक पण्डित कालूराम जी तो क्या इनके सरीखे लक्षों पण्डित क्यों न जान लड़ावें, एक जन्म में तो क्या सात जन्म भी क्यों न लें, सात जन्म तो कुछ नहीं, सात लाख जन्म भी क्यों न लगावें लेकिन उक्त प्रमाणों का खण्डन नहीं कर सकते । बस इस एक ही प्रमाण से आपके सबही प्रमाण कट जाते हैं यह उक्त प्रमाण ही आप की ज़बान दराज़ी रोकने के लिये पर्याप्त है । परन्तु मैं चाहता हूं कि आपके पाखण्ड का भण्डा फोड़ ऐसा कर दिया जाय जिससे आप फिर क़लम उठाने के योग्य ही न रहें । ऐसी दशा में आपके प्रत्येक प्रमाणों की समालोचना करना कर्तव्य हो जाता है । स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर के शरीर का

खण्डन "सपर्यगात्" इस मंत्र से किया है, परन्तु आपने स्वामी जी कृत अर्थ को अनेक वाग्जालों से खण्डन किया है और इसी मंत्र से ईश्वर का शरीर सिद्ध किया है। इसलिये प्रथम यही मंत्र लिया जाता है।

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु० अ० ४० मंत्र ८॥

इसका अर्थ स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं।

हे मनुष्यो! जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित और नहीं छेदने योग्य (अस्नाविरम्) नाड़ी आदि के सम्बन्धरूप बन्धन से रहित (शुद्धम्] अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र (अपाप विद्धम्) जो पापमुक्त, पापकारी और पाप में प्रीत करने वाला नहीं होता (परिअगात्) सब ओर से व्याप्त है (कविः) सर्वज्ञ (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला और (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला अनादि स्वरूप जिसके संयोग से उत्पत्ति विभाग से नाश माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि स्वरूप अपने स्वरूप से उत्पन्न और विनाश रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (याथातथ्यतः) यथार्थ भाव से अर्थात वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्

विशेष करके बनाता वही परमेश्वर तुम लोगों को उपसना करने योग्य है।

इसी मंत्र पर स्वामी शंकराचार्य्य का भाष्य यह है।

स पर्यगात्स यथोक्त आत्मा पर्यगात् परि समन्तात् अगात् गतवान् आकाशवद् व्यापीत्यर्थः। वह आत्मा जैसा कि (यस्मिन् सर्वाणि) इत्यादि मंत्र में कहा गया है, आकाश के समान सर्वत्र व्यापक है। शुक्रं शुद्धं ज्योतिष्मद्दीप्तिमानित्यर्थः। प्रकाशमान है। अकायम् अशरीरं लिंगशरीर—वर्जित इत्यर्थः। जो लिंग शरीररहित है। अव्रणं अक्षतम् क्षतरहितम्। जिसमें कोई व्रण न हो। अस्नाविरम् जो नसनाडी से रहित है। अव्रणमस्नाविरमित्याभ्यांस्थूलशरीरप्रतिषेधः॥ अव्रण और अस्नाविर ये जो दो विशेषण दिये गये हैं इन दोनों से परमात्मा के स्थूल शरीर का निषेध है। शुद्धम् निर्मलमविद्यामलरहितमिति कारणशरीर प्रतिषेधः। वह शुद्ध अर्थात् अविद्यादिमलरहित है। इससे उसके कारण शरीर का प्रतिषेध है। अपापविद्धम् धर्माधर्मादिपापवर्जितम्। धर्म अधर्म आदि पाप से रहित है। कविः क्रान्त दर्शी सर्वदृक् मनीषी मनस ईषिता सर्वज्ञः ईश्वरइत्यर्थः सर्वज्ञ ईश्वर। परिभूः सर्वोपरि भवतीति परिभूः जो सबके ऊपर हो, उसके ऊपर कोई न हो। स्वयंभू जो स्वयं होता है और जो ऊपर होता है वह सब स्वयं वही है। नित्य मुक्त ईश्वरो याथातथ्यतः सर्वज्ञत्वाद्यथातथा भावो याथातथ्यं

यस्माद्‌ यथाभूतकर्मफलसाधनतः अर्थान्‌ कर्तव्यपदार्थान्‌ व्यदधात्‌ विहितवान्‌ । यथानुरूपं व्यमर्जादित्यर्थः॥ शाश्वतीभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः संवत्सराख्येभ्यः प्रजापतिभ्य इत्यर्थः॥

इसी पर महीधर भाष्य देखिये

य एवमात्मानं पश्यति स ईदृशं ब्रह्म पर्यगात्‌ परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः । जो इस प्रकार आत्मा को देखता है वही ब्रह्मको प्राप्त करता है॥ शुक्रं शुद्ध विज्ञानानन्द स्वभावमचिन्त्यशक्ति । अकायं=नकायं शरीरं यस्यतत्‌ = जिसका शरीर नहीं है। अकायत्वादेवाव्रणमक्षतम्‌=चूंकि वह अकाय है इसीलिये फोड़ा फुंसी से रहित है। अस्नाविरम्‌= स्नायुरहितम्‌। अकायत्वादेव शुद्धमनुपहतं सत्वरजस्तमोभिः। चूंकि वह अकाय है इसलिये वह शुद्ध है अर्थात्‌ सत्वरज तम इन प्रकृति गुणों से दूषित नहीं है । अपापविद्धम्‌= क्लेशकर्म विपाकाशय से अस्पृष्ट। अकायमव्रणमस्नाविर मिति पुनरुक्तिरर्थातिशयद्योतनाय । अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते॥ अकाय होने ही से काम चल गया अव्रण और अस्नाविर पदकी क्या आवश्यकता थी यह तो पुनरुक्ति दोष है इसका समाधान महीधर यों करते हैं—यह पुनरुक्ति अर्थातिशय के प्रकाश के लिये आई है। निरुक्त १०।४२ में लिखा है कि जहां पुनरुक्ति वेदमें होती है वहां प्रतिपाद्यविषय को और भी दृढ़ करने के लिये होता है॥ इत्यादि...

पाठक वृन्द, मैंने स्वामी जी के भाष्य के साथ साथ महीधर और शंकर भाष्यभी दे दिया है। जिसके पढ़ने से पता लग जायगा कि तीनों भाष्यकारों का मत ईश्वर के स्वरूप की ओर एकही हैं। शरीर तीन प्रकार का होता है। स्थूल, सूक्ष्म कारण। स्वामी जी अकाय पद से ईश्वरको तीनों प्रकार के शरीरों से रहित कहते हैं। स्वामी शंकरा· चार्य्य भी ईश्वर को स्थूलसूक्ष्म कारण शरीर से रहित ही अर्थ करते हैं। महीधर ने उक्त मंत्रके दो अर्थ किये हैं। पहला अर्थ तो अपना है। दूसरा अर्थ शंकर के अर्थ का अनुयायी है। इन्होंने स्थूल शरीर का भली भांति निराकरण कर दिया है। यह तीनों भाष्यों का निष्कर्ष है। यह मंत्र परमात्मा के निराकारत्व का प्रतिपादक है। अतः स्वामी जी का अर्थ सर्वथा ठीक है।

अब कालूरामजी के पाखण्ड की

परीक्षा कीजिये।

(१) आप लिखते हैं कि स्वामी जी का यह अर्थ ठीक नहीं है। यदि इससे ईश्वर के शरीर का निषेध मानोगे तो ईश्वर घोड़ों की लीद से मनुष्यों को तपाता है" स्वामी दयानन्द के इस विरोधी लेख-जो आगे आवेगा—की संगति कैसे लगेगी?

समीक्षा—स्वामी जी का अर्थ ठीक नहीं इसलिये कि वे आपके प्रतिपक्षी हैं, परन्तु शंकर और महीधर के अर्थों के मानने में आपको क्या आपत्ति है। इसे तो आप सौ जन्म में भी गलत नहीं कह सकते। जब तीनों भाष्यों में ईश्वर का निराकारत्व ही प्रतिपादन किया गया है तो एक को गलत कहना और दूसरे को सही मानना, लेखक की अयोग्यता, पक्षपातित्व का एक ज्वलन्त प्रमाण है या नहीं? द्वेष के वशीभूत होकर, सत्य को छिपाने का प्रयत्न करने वाले मनुष्य से जनता के उपकार की क्या आशा की जासकती है?

रहगई विरोध की बात, ईश्वर घोड़ों की लीद से मनुष्यों को तपाता है, इसकी पर्याप्त समालोचना वहीं पर की जावेगी जहां आप उक्त मंत्र देकर आक्षेप करेंगे। संगति लगाना और पाठकों के हृदय के तह में उसे बैठा देना यह मेरा काम है। पाठकों को दोनों विचारों को पढ़कर सत्य असत्य का स्वयं ज्ञान हो जावेगा। फिर आपको बहकाने का मौका ही न मिलेगा। अभी पूर्व में वेदान्त सूत्र द्वारा यह सिद्ध करके दिखला दिया गया है कि ईश्वर निराकारही है. साकार औपचारिक है। उसपर जरा कलम उठाइये।

(२) स्वामी जी ने कविका अर्थ सर्वज्ञ किया है। कैसा अन्याय है कवि पद प्रथमान्त और उसका अर्थ सप्तम्यन्त। विभक्ति ही बदल डाली। इत्यादि

समीक्षा—अब श्रीकालूरामजीने वितण्डावाद उठाया है।

क्योंकि मंत्र से तो परमात्मा के स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों प्रकार के शरीर का निषेध एक नहीं, तीन भाष्यों से प्रमाणित कर दिया गया फिर इस मंत्र पर अधिक विचार करने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। पर पक्षपात के कारण ठीक अर्थ को गलत साबित करने के लिये आपने वितण्डावाद का आश्रय लिया है अतः उसका भी निराकरण करना आवशयक है।

अशुद्ध छपे हुए वाक्यों को लेकर कालूरामने यह वितण्डा वाद उठाया है। केवल हिन्दी यजुर्वेद भाष्य में सर्वज्ञ के स्थान में सर्वत्र छप गया है। कालूराम को चाहता था कि सत्यार्थ प्रकाश देख लेते या संस्कृत भाष्य देख लेते क्यों कि एक मोटी बुद्धिवाला मनुष्य इतना भलो भांति समझ सकता है कि कविका अर्थ सर्वत्र कभी नहीं हो सकता, अवश्य यह छापेकी भूल होगी। परन्तु कालूरामने ऐसा न किया। वे जानते थे कि यह छापे की गलती है, पर उन्हें तो करना था वितण्डावाद, और करना था अपने असत्पक्षकी पुष्टि, फिर वे सत्यान्वेषण की ओर क्यों प्रवृत्त हों? पाठको, भाष्य में ज्ञके स्थान में त्र छप गया है। सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कृत भाष्य में सर्वज्ञ छपा है इसलिये कालूराम का आक्षेप सर्वथा निर्मूल है।

(२) स्वामीजी ने परिभू का अर्थ किया है, "दुष्ट पापियों का तिरस्कार करनेवाला" इस पर आप पुनः पाखण्ड की दीवाल

खड़ी करते हैं और कहते हैं कि यह "दुष्टपापियों" कहां से आगया।

समीक्षा—परि उपसर्ग पूर्वकभू धातु का अर्थ तिरस्कार करना होता है। इसी से परिभव आदि शब्द बनते हैं। इस को तो आप मानते ही हैं आप केवल "दुष्ट' कहां से आगया, यही पूछते हैं। जब परिभू का अर्थ तिरस्कार करनेवाला आपने मानही लिया है, तब प्रश्न यह है कि किसका तिरस्कार? सज्जनों का तिरस्कार तो ईश्वर कभी करता ही नहीं, वहतो दुष्टों और पापियों का ही तिरस्कार करता है। यह बात सूर्यप्रकाशवत् सत्य है। फिर शब्दकी आकांक्षा से स्वामी जी ने इस "दुष्ट पापियों को" लिखा तो इसमें कौनसी आपत्ति? सत्य है, आंख तो फूटी ही थी, हृदय की आंख भी पक्षपात से फूट गई है, अथवा अन्धी भेड़ों को भटकाने से बचाने के लिये आपने यह जाल रची है।

आपने जो यह लिखा है कि हम " सज्जनों का तिरस्कार करने वाला" अर्थ करेंगे क्योंकि मनघड़न्त तो हम भी कर सकते हैं इसका सीधा उत्तर तो आपके लिये यही है कि आप अर्थ कर सकते हैं क्यों कि आपका ईश्वर ऐसा ही अन्यायी है। वृन्दा ने कौनसा अपराध किया था कि आपके ईश्वर विष्णु ने उसका सतीत्व ही नष्ट कर दिया? जलन्धर ने कौन पाप किया था जिसे छल करके मारा। तुलसी ने क्या पाप किया था जिससे उसका सतीत्व नष्ट किया?

बस जब आपका ईश्वर छली, अन्याय व्यभिचारी अन्यायी है तो उसके लिये आपकी कल्पना ठीक ही होगी। इसी बातको ध्यान में रखकर शायद आपने प्रश्न किया होगा। नहीं तो इस कुतर्क से क्या लाभ? परन्तु आर्यों का ईश्वर अन्यायी व्यभिचारी छली बेइमान नहीं है अतःवह यदि तिरस्कार करेगा तो दुष्ट पापियों का ही, सज्जनों का नहीं, कहिये ठीक है या नहीं?

अब मैं आपसे पूछता हूं

आपतो स्वामी शंकराचार्य्य के भाष्य को मानते ही हैं अब आपही बतलाइये स्वयंभू का अर्थ जिसके ऊपर होता है, जो ऊपर होता है यह अर्थ किस पदसे निकला?

महीधरने यजु० अ० १ कण्डिका ११ में भूताय का यह अर्थ किया है "यागान्तर के लिये, या ब्राह्मणों को फिर भोजन कराने के लिये" बतलाइये यह अर्थ कहांसे लिया गया? ऐसे एक नहीं दो नहीं सैकड़ो प्रश्न किये जासकते हैं जिसका उत्तर आपसे इस जन्म में तो क्या लाखों जन्म में भी नहीं आवेगा।

(४) आप स्वामीजी के उक्त शब्द के किये हुये अर्थ पर यह एतराज़ करते हैं कि इतने छोटे से शब्द का दो हाथका लम्बा अर्थ कहां से आगया, यह अर्थ समाज के सिद्धान्तों को जड़ से उखाड़ देता है। यथा—

१-जब ईश्वर निराकार सर्व व्यापक है तो फिर उसका संयोग वियोग कैसा?...... फिर उसके संयोग से उत्पत्ति कैसी, क्या उत्पत्ति के लिये समाज ईश्वर के संयोग की जरूरत समझती है?

३—वियोग से नाश कैसा? क्या ईश्वर के निकल जाने से नाश होता है?......

४—माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि मरण नहीं होते यहां विचारिये, उस परमात्मा के वियोग से नाश होता है यह कह आये लेकिन अब कहते हैं कि वियोग से मरण नहीं होता तो क्या यह संयोग से होता है।

समीक्षा—कालूराम जी ने यातो स्वामी जी के वाक्य को समझाही नहीं अथवा समझ करके भी अनपढ़ अन्ध विश्वासी लोगों को अपने जालमें फसा रखने के लिये पाखण्ड की जाल रची है और देवीभागवत के "ये पूर्वं राक्षसा राजन्" * इत्यादि इस वाक्यको अक्षरशः सिद्ध करके दिखला दिया है।

---

* पूर्वं ये राक्षसा राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः।
पाखण्डनिरताः प्रायो भवन्ति जनवंचकाः॥
असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः।
शूद्रसेवापरा केचित् नानाधर्मप्रवर्तकाः॥
वेदनिन्दाकराः क्रूराः धर्मभ्रष्टातिवादुकाः।

[देवी भागवत स्कन्ध ६ अ० ११]

जो पूर्व काल में राक्षस थे, वेही कलि में ब्राह्मण कहे गये हैं जो पाखण्ड में लगे रहते हैं, लोगों को ठगते हैं, झूठ बोलते

यह तो कोई नहीं कह सकता कि वाक्य आपके समझ में नहीं आया, समझमें आया तो जरूर, पर यदि पाखण्ड लीला न फैलावें तो देवीभागवत का बचन कैसे सत्य हो? इन्होंने इतना भारी पोखण्ड खड़ा करते समय इतना भी न सोचा कि जब मेरा पर्दा फटेगा तो मुंह छिपाने को स्थान कहां मिलेगा। अस्तु, पाठक वृन्द, अब आप स्वामी जी के वाक्य की ओर ध्यान देवें।

"जिसके" इस पद का सम्बन्ध संयोग वा वियोग से नहीं है किन्तु इस पद का सम्बन्ध "संयोग से उत्पत्ति वियोग से नाश, माता पिता गर्भवास जन्म वृद्धि और मरण नहीं होते" इस कुल वाक्य से है अर्थात् जिसकी संयोग से उत्पत्ति नहीं होती, वियोग से नाश नहीं होता, जिसके माता पिता नहीं, जो गर्भवास में नहीं, आता, जिसका न जन्म होता है और न मरण होता है ऐसा वह परमात्मा "स्वयंभू" शब्द वाच्य है।

यह है स्वामी जी के वाक्य का अर्थ। अब उनके चारो आगे के प्रश्न स्वयं नष्ट हो गये। अनुचित अर्थ का उपयोग करके ५ प्रश्न उन्होंने खड़े कर दिये थे जिसका परिहार होगया। ये प्रश्न साकार पर घटते हैं इसे आपने स्वयं स्वी·

हैं, वेद धर्म को नहीं मानते। शूद्रों की सेवा करते अनेक धर्म चलाते हैं वेद की निन्दा करते हैं। धर्म से भ्रष्ट बड़े वाचाल होते हैं।

कार कर लिया है और ईश्वरको एक देशी भी मान लिया क्योंकि संयोग वियोग सर्व व्यापक का नहीं, किन्तु साकार एक देशीय का होता है। यह बात सत्य भी है।

अब रह गई यह बात कि एक वाक्य का दो हाथ लम्बा अर्थ कैसे हुआ? कालूरामजी, यहां भी अपनी धूर्तता से ही काम लेते हैं। स्वामीजी का कुल वाक्य इसी एक स्वयंभू शब्द से उसी प्रकार से निकलता है जैसे स्वामी शंकराचार्य्य का दो हाथ का अर्थ इसी स्वयंभू शब्द से निकला है। क्योंजी कालूराम स्वामी शंकराचार्य महाराज का दो हाथ लम्बा अर्थ कहाँ से आगया? इतना पाखण्ड क्यों करते हो? कुछ भी शरम खाया करो। जो अकृतक है, जिसको कोई बनानेवाला, पैदा करनेवाला नहीं है, उसके लिये स्वामीजी लिखित विशेषण देना क्या अनुचित है? जब वह स्वयंभू है तब न तो उसका संयोग से जन्म, न वियोग से मृत्यु न तो गर्भवास न वृद्धि ह्रास हो सकता है, अतः स्वामी जी का अर्थ बिलकुल ठीक है। महीधर में स्वयंभू का अर्थ अकृतक (स्वयं सिद्ध) किया है (यजु०२-२६) यदि उनका यह अर्थ ठीक है तो स्वामीजी का अर्थ भी सोलहो आना ठीक है।

(५) आप पूछते हैं कि परमात्मा ने वेद द्वारा सब पदार्थों को बनाया, यह कैसे घटेगा?

समीक्षा—आपने वेद का अर्थ ६ वेद संहिता मान रखी है इसीसे आपके दिमाग़ में फ़तूर आगया। प्रकरण के विरुद्ध शब्द का अर्थ करना पण्डितों को शोभा नहीं देता। हां भूल गया, आप इसीके पण्डित हैं। फिर छल कपट को छोड़ कर आपमें सचाई कहां से आवेगी?

पुस्तकाकार वेद है क्या? आप इसे क्या मानते हैं? यही न मानते हैं कि यह ईश्वर का ज्ञान है। तो क्या पुस्तकाकार प्रकट होने के पहले ईश्वर का ज्ञान न था? यदि था तो फिर प्रकरण विरुद्ध खींचतान करके एक पन्ना कागज रंगने की क्या आवश्यकता थी! इस प्रकार पाखण्डरचना से स्वामी जी का उचित अर्थ अनुचित नहीं हो सकता।

(६) स्वामी जी के हिन्दी भाष्य में सनातन के स्थान पर सन्तान छप गया है इसी को लेकर आप स्वामीजी पर आक्षेप करते हैं। यह भी आपकी पण्डिताई का एक नमूना है। यदि कालूराम संस्कृत भाष्य देख लेते तो इतना पाखण्ड खड़ा करने की आवश्यकता ही न पड़ती। यह शरारत भी जान बूझ कर की गई है। आज कल के देवी भागवत वाले सनातनी ब्राह्मणों के जिम्मे यही धोखेबाजी और मक्कारी पड़ी है, बेचारे करें तो क्या? संस्कृत भाष्य तथा उसकी हिन्दी टीका में शाश्वती का अर्थ सनातन छपा है।

दूसरी पुस्तक में यदि सनातन के स्थान पर सन्तान छप गया तो उसे गलती समझ लेनी चाहती थी यह तो थोड़ी सी बुद्धि से भी संस्कृत का पण्डित समझ सकता है।

(७) स्वामीजी ने अपने भाष्य के अन्त में जो यह लिखा है कि वही परमात्मा तुम लोगों के उपासना करने के योग्य है। इस पर आप यह टिप्पणी चढ़ाते हैं कि स्वामी जी ने यह भी मिलाया है।

समीक्षा—अवश्य ही उक्त अंश वेद मंत्र में नहीं है। पर इससे हानि क्या हुई ? आपने नहीं लिखा। प्रकरण के अनुसार स्वामीजी का "वही परमात्मा तुम लोगों के उपासना करने योग्य है, यह कथन बिल्कुल सही है। इसके पूर्व के मंत्र में उपासना का ही विषय है। भाष्य में तो ऐसा होता ही है। क्या सायण महीधर अथवा स्वामी शंकराचार्य्य आदि पूर्व के आचार्यों ने ऐसा ही नहीं किया है ? ऐसे एक नहीं दो नहीं सैकड़ों क्या हजारों उदाहरण मौजूद हैं। पर खलों को अपना ऐब बेल बराबर होने पर भी नहीं सूझता। और दूसरों का गुण भी उन्हें पहाड़ के समान ऐब दीखता है। क्या आप बतला सकते हैं कि महीधराचार्य्य ने यजुर्वेद के प्रथम मंत्र के भाष्य में "यद्यपि अचेतना शाखा तथापि तदभिमानिनीं देवतामुद्दिश्यैवमुक्तम्। यथा शालग्रामशिलायाम् अचेतनेपि शालग्रामे शास्त्रदृष्ट्या विष्णुसन्निधिमभिप्रेत्य विष्णुं संबोध्य षोडशोपचारान्विदधत इत्युक्तं प्राक्। इतना बड़ा

वाक्य कहां से लाये? यह उनके मन का घड़न्त ही है न? फिर इसके विरुद्ध कलम क्यों नहीं उठाते। क्या यही शराफत है। ऐसी मक्कारी से अवतार सिद्धि थोड़े ही होगी।

(८) प्रश्न—स्वामीजी ने अकाय का अर्थ स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रहित किया है और आगे अव्रणं का अर्थ छिद्र रहित या यों कहिये कि फोड़ा फुन्सी घाव रहित किया है। महाशयजी, अव्रण पद से आपके परमात्मा की निराकारता ऐसे भागी कि डिटेक्टिव पोलीस भी खोजने में असमर्थ है क्योंकि शरीर सत्ता के बिना फोड़े फुन्सी घाव का निषेध सर्वथा अनुचित है। आपका अव्रणम् पद साफ जाहिर करता है कि ईश्वर का शरीर तो है पर फोड़ा फुन्सी घाव रहित है।

ख—अस्नाविरम्-नसनाड़ी का बन्धन नहीं, यह कहना ही साबित करता है कि नसनाड़ी के बन्धनं से रहित परमात्मा काशरीर है न कि शरीर ही नहीं।

ग—अपापविद्धम्—ईश्वर को "अपाप विद्धम्" कहना ही कह रहा है कि वह शरीरवान् है अन्यथा ऐसा कहना ही व्यर्थ होगा।

घ—स्वामीजी के भाष्य में एक नहीं चार चार व्याघात दोष भरा है अकायम् कह कर "अव्रणम्" फिर "अस्नाविरम्" फिर "शुद्ध" फिर "अपापविद्ध" कहना एक नहीं चार चार व्याघात दोष वेदोंमें डाल रखा। इस व्याघात दोष से

(न्या० अ० आ० अ० २ सू० ५८) स्वामी का भाष्य अप्रमाण्य है।

कालूरामजी ने अपने कुतर्क से स्वामी जी को ही नहीं किन्तु महीधर शंकराचार्य्य वेदान्त प्रणेता व्यास को भी उल्लू बनानेका प्रयत्न किया है। शंकराचार्य्य और महीधर का अर्थ पीछे दिया जा चुका है। जिस प्रकार स्वामीजी ने अपने अर्थमें ईश्वर के स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर का निषेध किया है, स्वामी शंकराचार्य्य ने भी वैसाही किया है। आपके विचार से सब ही उल्लू, यदि विद्वान हैं तो कालूराम जी जो असत्य और पाखण्डकी साक्षात् मूर्ति हैं। इनका पाखण्ड तो इसी से प्रकट है कि स्वामीजी के भाष्य को खण्डन करने के अभिप्रायसे स्वामी शंकराचार्य के अर्थको जानते हुए भी छिपाया।

जितने दोष आपने स्वामी के भाष्य में दिखलाये हैं यदि वे कालूराम के विचार से सत्य हैं तो क्या उसी दोष से शंकराचार्य और महीधर के भाष्य दूषित होकर त्याज्य हुये या नहीं? इसका उत्तर कालूराम के पास क्या है? क्या कालूराम इसका उत्तर देने के लिये तैयार हैं?

महात्मन्, निराकारता कैसे भागेगी जिसके पैर ही नहीं वह भागेगा कैसे? विना पैरके आप उसे कैसे भगा रहे हैं. क्या निराकार को भी पैर होता है। यहां पर आपका शब्द जाल कहाँ गया। साकारता इस मंत्र से अवश्य भाग जाती है, पर अन्धे को न सूझे तो कोई क्या करे। देखो तो सही,

स्वामी शंकराचार्य ने किसे भगाया है अव्रणमस्नाविरमित्या-भ्यां स्थूल प्रतिषेधः अव्रण और अस्नाविर इन दो पदों से ईश्वर के स्थूलशरीर का प्रतिषेध है। कहिये शास्त्री जी, साकारता भागी या निराकारता ? ईमान से कहना। अब या तो आप डिटेक्टिव पोलीस में नाम लिखाकर उसकी सत्ता की खोज करो या अपने और किसी भाई को इसकी खोज में लगा दो।

आप स्वामी शंकराचार्य और महीधराचार्य्य के अर्थ को देखते और जानते हुये भी तदनुकूल स्वामीजी के अर्थ को खण्डन करने के लिये यह कुतर्क करते हैं कि अव्रण आदि पद ही उसके शरीर के प्रतिपादक हैं क्योंकि "प्राप्तौसत्यां निषेधः" निषेध उसीका होता है जिसकी प्राप्ति है। फोड़ा फुंसी का निषेध ही यह सिद्ध करता है कि उसका शरीर है।

शास्त्रीजी, यदि यह कथन ठीक है तो बतलाइये।"निष्क्रिया निर्गुणाः गुणाः यहां आप देखते हैं कि गुणको निष्क्रिय और निर्गुण बतालाया गया है। क्या गुण में क्रिया की प्राप्ति है। गुण में क्रिया कालत्रय में नहीं होती। फिरबिना प्राप्तिके निषेध यहां पर कैसे होगया। ध्यान में आया ?

ठीक इसी तरह बिना प्राप्ति के उपदेशार्थ यहां पर अव्र-णम् अस्नाविरम् आदि पद मंत्र में आये हैं। शरीर की सत्ता बतलाने के लिये नहीं। यदि ऐसे ही कुतर्क करने लगियेगा तो आप पर बड़ी आपत्ति आ जावेगी। मोहन ने आपको

कहा कि पं० कालूराम निर्दोष निष्कपट व्यभिचार रहित निष्पाप आदि गुण विशिष्ट हैं तब हरिने कहा कि "प्राप्तौ सत्यां निषेधः प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है इसलिये कालूराम दोषी, कपटी, व्यभिचारी, पापी और इलक आदि गुणों से भी युक्त हैं। कहिये आप इस कुतर्क से कितने बड़े खन्दक में गिरने जा रहे हैं।

परमात्मा के और विशेषणों पर ध्यान दीजिये। अनणु अहृस्व अदीर्घ आदि शब्द परमात्मा के विशेषण रूप में आये हैं। अब आपके कुतर्क को काम में लाकर यह कह दें कि यहांपर स्थूलत्व का निषेध प्राप्त होने से ईश्वर स्थूल भी है। हृसत्व का निषेध होने से वह हृस्व भी है। दीर्घत्वका निषेध होनेसे वह दीर्घ भी है तो इसे कौन मानेगा? और किस आचार्य ने ऐसा माना है। इसलिये महाराज जी कृपा करके कुतर्क का आश्रय तो त्याग दें, इसमें आपकी ही बेइज्जती है—

उघरे अन्त न होहि निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥

आपके कुतर्क के कारण आपके पूज्य आचार्यों की अप्रतिष्ठा होती है इसका निराकरण आप कैसे करते हैं। क्योंकि इस मंत्र के अर्थ में सब ही आचार्य समान हैं। किसी ने ईश्वर का शरीर नहीं माना है।

व्याघात दोष निराकरण—स्वाजी के भाष्यमें तो कहीं

भी व्याघात दोष नहीं दिखलाई देता। स्वामीजी ने तो वेद मंत्र के पदों का अर्थ मात्र किया है और वही अर्थ स्वामी शंकराचार्य और महीधर भी करते हैं यदि व्याघातदोष आपके कथनानुसार स्वामीजी के भाष्यमें है तो उसी व्याघात दोष से स्वामी शंकराचार्य्य का भाष्य कैसे मुक्त हो सकता है। कुतर्क से वेद मंत्र के अर्थ का अपलाप आप करते हैं और दोष देते हैं स्वामी दयानन्द को। क्या इसी पाखण्ड की बदौलत सनातन धर्म की रक्षा होगी?

महात्मन्, देखिये तो सही, आपके कुतर्क को महीधर ही ने कैसा खण्डन किया है। वे लिखते हैं—

अकायत्वादेवाव्रणमक्षतम्। चूँकि ईश्वर अकाय है इसी लिये उसमें फोड़ा फुंसी नहीं। अकायत्वादेव शुद्धम्। चूँकि वह अकाय है इसीलिये वह शुद्ध है। 'अकायमव्रणमस्नाविरमिति पुनरुक्ति अर्थातिशय द्योतनाय।' अकाय अव्रण, अस्नाविर ये तीनो पद अर्थ की उत्कर्षता प्रकट करने के लिये आये हैं। अर्थात् इन तीनों पदों से यही बतलाया गया है कि वह शरीर रहित ही है शरीर युक्त नहीं। अपने कथन में वे निरुक्त का प्रमाण देते है। अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते। वेद में जब किसी शब्द की पुनरुक्ति होती है तो उससे अर्थ पर अधिक जोर पड़ता है। ऐसा पूर्वाचार्य्य लोग मानते चले आये हैं। इस लिये यहां पर 'अकाय' पद

बल देने के लिये अव्रणम् अस्नाविर शुद्ध आदि पद आये हुये हैं।

कालूरामजी लिखते हैं–

स्वामीजी ने स्वयंभू शब्द का अर्थ अशुद्ध किया है। वैसा अर्थ कोई भी त्रिकाल में सिद्ध नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य कहीं भी इस अर्थ का पता नहीं देता। स्वयंभू शब्द स्वयं अवतार साबित कर रहा है। इसके आगे आपने भू का अर्थ "पैदा होना" लिखकर अपने पक्ष की पुष्टि में कुछ प्रमाण उद्धृत किये हैं।

स्वामीजीने स्वयंभू का अर्थ किया है—जिसका संयोग से उत्पत्ति, वियोग से नाश नहीं होता, जिसके माता पिता नहीं, जिसको गर्भवास जन्म मरण आदिनहीं होते वह परमात्मा स्वयंभू है। शास्त्रीजी कहते हैं कि यह अर्थ कालत्रय में भी नहीं हो सकता। संस्कृत साहित्य में इसका कहीं पता नहीं। पर आपका ऐसा कहना केवल अभिमान मात्र है। संस्कृत साहित्य का जानने वाला, कभी भी ऐसी बेवकूफी की बातें न लिखेगा। लीजिये मैं आपको प्रमाण देता हूं। आप यजुर्वेद उठाइये और उसे खोल कर दूसरे अध्याय के २६ वें मन्त्र पर महीधर का भाष्य पढ़िये। वहां पर स्वयंभू का अर्थ आपके आचार्य महीधर ने अकृतक (स्वयंसिद्ध) लिखा है। बतलाइये आपका संस्कृत साहित्यका ज्ञान कहां

गया? "सचोरो बभूव" इसका अर्थ क्या आप कीजियेगा कि वह चोर पैदा हुआ? या वह चोर हो गया? 'स प्रांशुरस्ति' इसका अर्थ क्या यह कीजियेगा कि वह लम्बा पैदा हुआ या वह लम्बा है। आप कहियेगा कि भू का अर्थ दोनो होता हैं, जहां जैसा मौका आवेगा वहां वैसा अर्थ किया जावैगा यदि यह ठीक है तो स्वामी जी के अर्थ पर आक्षेप क्यों? क्या यह धूर्तता नहीं है?

अर्थ दोनों हो सकते हैं, पर कौनसा अर्थ यहां पर उपयुक्त है इसी पर विचार करने से सत्यता प्रकट हो जावेगी। आपके अर्थ में निम्नलिखित दोष आवगे।

१—सबसे भारी विरोध तो यही होगा कि आपका अर्थ वेदान्तशास्त्र विरुद्ध है वेदान्तदर्शन अध्याय ३ पाद २ में 'नस्थानतोपि' इत्यादि सूत्रों से ईश्वर को निराकार सिद्ध करके साकार का खण्डन किया गया है। और उसको चैतन्य स्वरूप बतलाया गया है।

२—जो पैदा होता है वह मरता है। उसमें रागद्वेश होते हैं। सुख दुख होते हैं। परन्तु परमात्मा सुख दुख राग द्वेष जन्म मरण से परे हैं। क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः॥

३-स्वामी शङ्कराचार्य के अर्थ के विपरीत पड़ता है। मन्त्र के पूर्वार्ध में स्वामी शंकरा चार्य ने अकायम् पदसे ईश्वर के

लिंग शरीर अव्रण' अस्नाविरं पदसे उसके स्थूल शरीर और शुद्ध' पद से उसके कारण शरीर का प्रतिषेध किया है फिर उत्तरार्ध में स्वयंभू शब्द से स्वयं अवतार लेना, अर्थात् स्थूल शरीर धारण करना कैसे बनेगा ?

(४) महीधर के अर्थ से विरोध होगा उन्होंने भी स्वामी शंकराचार्य सरीखे द्वितीय अर्थ किया है। प्रथम अर्थ भी शरीर का निषेधक है।

इस लिये यद्यपि भू धातु का लाक्षणिक अर्थ कहीं कहीं ऐसा होना भी हो सकता है, परन्तु यहां पर उक्त विरोध के कारण आपका अर्थ माननीय नहीं हो सकता। उक्त विरोधों को बिना हटाये आपका अर्थ कोई भी विद्वान स्वीकार नहीं कर सकता। इस लिये अब आपका शेर आपही को वापिस किया जाता है। यथा—

लाख चालाकियां की लाख दगाबाजी की। अपना मतलब जो था अफसोस वह हासिल न हुआ।

आपने मनुस्मृति अ० १ के श्लोक ६ को देकर कुल्लूक भट्ट के अर्थ के अनुसार स्वयंभू का अर्थ "शरीर धारण करने वाला" दिखलाया है। मैंने आपको महीधर का प्रमाण दिया है। महीधरने स्वयंभू का अर्थ अकृतक (स्वयंसिद्ध) किया है। शंकराचार्य ने कुछ और किया है। महीधर ने इस वेद मंत्र के भाष्य में स्वयंभू का अर्थ ब्रह्मरूप से होनेवाला किया है

और शंकर के समान भी अर्थ किया है। अब आपही बतलाइये कौन ठीक और कौन ग़लत माना जाय ?

मनुस्मृति में आये हुये स्वयंभू शब्दका अर्थ जो कुल्लूक भट्ट ने किया है वह उन्हीं के अर्थ से कट जाता है। उन्होंने उक्त मनु के श्लोक के अर्थमें अव्यक्त का अर्थ वाह्येन्द्रिय से अगोचर किया है। यदि ईश्वर का कोई शरीर है तो वह अगोचर कैसे हो सकता है। वह तो अवश्य ही दृश्य होगा। अतः उसी श्लोक के अव्यक्त पदसे उनका अर्थ स्वयं ग़लत सिद्ध हो जाता है। और यदि इस श्लोक के आगे वाले श्लोक का अर्थ देखियेगा तो और भी स्पष्ट हो जायगा। श्लोक ७ में उसे अतीन्द्रिय बतलाकर व्यास का एक श्लोक भी दिया है—

नैवासो चक्षुषाग्राह्यो न च शिष्टै रपीन्द्रियैः॥
मनसातु प्रयत्नेन गृह्यते सूक्ष्मदर्शिभिः॥

वह आंख आदि पंचेन्द्रियों का विषय नहीं है। सूक्ष्मादर्शी लोग उसे प्रयत्न करने पर मन से देखते हैं

अब आपही बतलाइये कि यदि कोई शरीर होता तो वह अतीन्द्रिय और मनोग्राह्य क्यों कहा जाता ?

शरीर कभी अतीन्द्रिय नहीं हो सकता। अतः कुल्लूक भट्ट का अर्थ उन्हीं श्लोकों में आये हुये शब्दों के अर्थ से गलत सिद्ध होता है। आप कहियेगा कि अगले आठवें में तो लिखा है:—

सोभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाप्रजाः।

अप एव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत् ॥

उसने विचार करके अपने शरीर से अनेक प्रजाओं को उत्पन्न किया। पहले "अप" आकाश उत्पन्न किया जिसमें उसने बीज बोया ॥

परन्तु यहां पर शरीरसे प्रकृति अभिप्रेत है। प्रकृति से सृष्टि पैदा होती है। वही उपादान कारण है। यथा, मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्-गीता। मेरी सत्तासे प्रकृति चर और अचर को पैदा करती है प्रकृति जड़ है ब्रह्म चैतन्य स्वरूप है। उसी की सत्तासे प्रकृति चेतन होकर कार्य करती है। जैसे इस पांचभौतिक शरीर में जीवात्मा मौजूद है। उसी की सत्ता से हाथ, पैर आदि काम करते हैं। पर यह शरीर जीवात्मा का शरीर नहीं है, इसी प्रकार प्राकृतिक ब्रह्माण्ड में ब्रह्म की सत्ता से प्रकृति काम करती है, पर प्रकृति उसका निजी शरीर नहीं है। वेदान्त दर्शन (३-२-१७) के अनुसार चैतन्यमात्र ही है, अरूप है, उपाधिभेदसे भी उसके दो रूप नहीं होते- इस पर पूर्व में प्रकाश डाला गया है। अस्तु!

पं० कालूरामजी के अर्थ पर विचार

मैंने वेदान्त शास्त्र के प्रमाण, तथा अनेक तर्कों से यह दिखला दिया कि परमात्मा शरीर रहित है। परन्तु आप हठ ही पर तुले हुये हैं और कहते हैं कि स्वामीजी का अर्थ गलत, मेरा अर्थ ठीक है आप का अर्थ यह है—

वह पूर्वोक्त परमात्मा सर्व व्यापी, पराक्रमी (अकाय) सुख दुःख विशिष्ट शरीर रहित, घावबर्जित नस नाड़ी रहित, शुद्ध पाप शून्य सर्वज्ञ, मन प्रेरक (परिभूः) समस्त देश काल में शरीर धारण शाली, (स्वयंभू) अपने आप शरीर धारण करने वाला ठीक ठीक अनन्त काल तक प्रजापतियोंके लिये पदार्थों को विभक्त करे।

प्यारे महाशय जी, इस मंत्र में सुख दुःख विशिष्ट शरीर का निषेध है दिव्य का नहीं अब कोईव्याघात भी नहीं पड़ता।

समीक्षा—आप ने काय पद का अर्थ सुख दुःख विशिष्ट शरीर किया है। आप कहते हैं कि उस परमात्मा को हम लोगों सरीखे सुख दुःख विशिष्ट शरीर नहीं है, किन्तु जैसे देवताओं का दिव्य शरीर होता है वैसे ही परमात्मा का भी दिव्य शरीर है और उसमें दुःख सुख नहीं होता।

पहले तो अकाय शब्द का जो अर्थ आपने किया है वह आप के आचार्य्यों के अर्थ से भिन्न है, दूसरे इस अर्थ को कोई भी कोष समर्थन नहीं करता। यदि आप हठ ही करें और इसी अर्थ को ठीक कहें तो भी आप का दिव्य शरीर धारी परमात्मा दुःखसुख आदिसे बच नहीं सकता। उसका शरीर दिव्य हो तो भी वह दुःख सुख का भोक्ता होगा इसका समर्थन आप का पुराण करता है। देखिये देवी भागवत स्कन्ध ४ अ० १५

क्या ब्रह्मा क्या विष्णु क्या महादेव क्या बृहस्पति, कोई

क्यों न हो, जो देहवान् होगा वह विकारों से अवश्य संयुक्त होगा। ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सबही रागी हैं। रागी कौनसा कुकर्म नहीं करसकता। रागवान् भी अपनी चतुराईसे विदेह के समान प्रतीत होता है। परन्तु जब संकट पड़ जाता है तो वह गुणों के चक्कर में फँस जाता है। उन सभी देवताओं का शरीर पंचतत्वों का बना हुआ है। वे समय पर सब मरते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है। देखिये दिव्य शरीर भी पञ्चतत्वों का ही होता है।

अब पाठक वृन्द विचार करके देखें कि जिस विष्णु का अवतार होता है और कालूराम जी जिसका दिव्य शरीर मानते हैं वह भी जन्म मरण के चक्कर में आता है। दुःख सुख दोनों अनुभव करता है। विष्णु का तुलसी; और वृन्दा के सतीत्व का नष्ट करना, क्या बतला रहा है! लक्ष्मीजी के घोड़ी बन जानेका शाप देना क्या बतला रहा है! विष्णु को दुःखहुआ, तभी तो शाप दिया! इत्यादि विष्णु सम्बन्धी कथायें पीछे पढ़कर देख लीजिये।

इसलिये परमात्मा का किसी भी प्रकार का शरीर नहीं है दिव्य शरीर मानने पर भी वह दुःख सुख से नहीं बच सकता जैसे कि ऊपर दिखलाया गया है। आपका पुराण तो उसको पांच भौतिक शरीर बतलाता है और आप दिव्य शरीर बतलाते है दोनों में कौन ठीक है! यदि पुराण में बतलाये पांच भौतिक शरीर को ही आप दिव्य माने तो भी पुराण के

ही आधार से वह दुःखी सुखी भी होता है परन्तु ईश्वर में दुःख सुख नहीं है इस लिये आप का अर्थ गलत सिद्ध होता है।

दूसरी बात यह है कि साकारत्व और अवतार से क्या सम्बन्ध! आपको अवतार सिद्ध करना चाहता था। और तद्द प्रति पादक मंत्र देना चाहता था, परन्तु आपने विषयान्तर जाकर व्यर्थ ही पृष्ठ के पृष्ठ रंग डाले हैं यदि आपके कथनानुसार जो कि गलत सिद्ध हो चुका है परमात्मा दिव्य शरीर वाला है तो रामकृष्ण आदि अवतार कैसे होंगे क्योंकि उनका शरीर तो पांचभौतिक था। आगे आप लिखते हैं कि वेदमें ऐसा एक भी मंत्र नहीं जो साकारका खण्डन करता हो फिर वेद में अवतार नहीं, यह कहना मनुष्यों को धोखे में फँसाना नहीं तो क्या है।

समीक्षा-जिस मंत्र से ईश्वर के साकारत्व के मण्डन में आपने चोटी से एड़ी तक बल लगाया, वही मंत्र आप के साकारत्वका खण्डन करता है। स्वामी शंकराचार्य्य महीधराचार्य्य इसके गवाह हैं फिर कैसे कहते हैं कि वेद में साकार खण्डन का एक भी मंत्र नहीं है।

कार्य और करण

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च॥ श्वे० श्वे० उप०

इस श्रुतिका अर्थ कालूराम जी करते हैं।

उस ईश्वर का कार्य और करण नहीं है उसके बराबर और उससे बड़ा और कोई नहीं दीखता। इसकी परा शक्ति अनेक प्रकार की सुनी जाती है। और ज्ञान बल क्रिया स्वभाव वाली हैं।

इस पर आप अपना टिप्पणी देते हैं। इस मंत्र में तो शरीर धारण करने का कहीं निषेध नहीं है और न कार्य का अर्थ शरीर है। पदार्थों में कार्य कारण दो भेद होते है जैसे घटकार्य है और पृथिवी उसका कारण है। अर्थात् जिससे कार्य पैदा होता है उसको कारण और जो बनता है उसको कार्य कहते हैं। अतएव इसका अर्थ यह हुआ कि ईश्वर का कोई कार्य नहीं, न कि शरीर निषेध—

समीक्षा—हम कालूराम जी की योग्यता की जितनी भी प्रशंसा करें उनकी योग्यता के आगे सब ही हेच है। आप करण शब्दका अर्थ कारण करते हैं,शाबास आपकी योग्यता!! जिसे करण और कारण में अन्तर प्रतीत नहीं होता वह भी सनातन धर्म का भारी पण्डित गिना जाता है, फिर सनातन धर्म डूबेगा या बचेगा? इस बेचारे को इतना भी न सूझा कि इस अर्थ से उसके अद्वैत सिद्धान्त की मट्टी पलीद होती है। एक ओर तो कहा जाता है कि यह सृष्टि कार्य है ब्रह्म अभिन्ननिमित्तो पादानकारण है दूसरी ओर यह कहा

जाता है कि उसका कोई कार्य नहीं, इसका क्या मतलब ! यह ठगबाजी नहीं तो क्या है ?

सच बात तो यह कि कालूराम जी को शास्त्रों का ज्ञान बहुत ही कम है। बेचारे को गाली गलौज से फुरसत मिले तब तो शास्त्र देखे, पर जब उसी से फुरसत नहीं तो फिर शास्त्र की मट्टी इनके द्वारा पलीद न होगी तो क्या पढ़े लिखे विद्वानों से होगी ?

जनाबमन, इस मन्त्र में कार्य नामशरीर का है करण नाम इन्द्रियों का है। अर्थात् परमात्मा को न तो शरीर है और न इन्द्रियां। पर आप मेरी बात तो मानेंगे नहीं, चाहे मेरी बात सोलहो आने सत्य क्यों न हो। इसलिये अनेक आचार्यों का मत दे देना ही उचित होगा।

न तस्य कार्यं शरीरं करणं चक्षुरादि विद्यते इति शंकराचार्याः।

स्वामी शंकराचार्य ने इस मंत्र के अर्थ में कार्य का अर्थ शरीर और,करण का अर्थ इन्द्रिय किया है।

तस्य परमात्मनः कार्यं समष्टि व्यष्ट्यात्मकं शरीरं करणं च न समष्टि व्यष्ट्यात्मकं वाह्यकरणमन्तः करणं च विद्यते इति विज्ञान भगवत्कृत भाष्यम्।

आचार्य विज्ञान भगवान् ने कार्य का अर्थ समष्टि-व्यष्टि आत्मक शरीर किया है और करण का अर्थ समष्टि-व्यष्टि-आत्मक-वाह्यन्तः करण किया है।

कहिये कालूरामजी, अब आपकी चलाकी कहां गई। अब क्या कहते हो। अब भी आपकी चाल चलेगी। और कोई चाल बाकी हो तो उसे लेकर मैदान में आ जाओ पर मित्र अब तो सिवाय चुप रहने के आप के पास कोई उत्तर ही नहीं है इसे तो मैं जानता हूं आप की कलई खुल गई, सदा के लिये आप पाखण्डी सिद्ध हो गये। कोशिश कर डालो शायद यह कलंक-कालिमा दूर हो सके।

एषोह देवः इत्यादि मंत्र पर विचार।

एषोह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वोह जातः स उगर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जना तिष्ठति सर्वतो मुखः॥

श्वे० श्वे० उप०, यजु० ३।३,

कालूरामजी का अर्थ यह है

यह जो पूर्वोक्त देव परमात्मा सब दिशा विदिशाओं में नानारूप धारण करके ठहरा हुआ है, यही प्रथम सृष्टि के आरंभ में हिरण्य गर्भरूप,से उत्पन्न हुआ वही गर्भ के भीतर आया वही,जो सबके भीतर अन्तः करणों में ठहरा हुआ है। और जो नाना,रूप धारण करके सब ओर मुखों वाला हो रहा है।

समीक्षा—यदि नानारूप धारण करके ठहरा हुआ है तो क्या वह आपको दिखलाई नहीं देता ? यदि दिखलाई देता है तो बतलाओ वे नानारूप कौन कौन हैं ? यदि आप दिखला दें तब तो झगड़ा ही मिट जाय।

इसी उपनिषद् के चौथे अध्याय के १२ वें मन्त्र में लिखा है कि हिरण्यगर्भ को परमात्मा ने उत्पन्न किया यथाः—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।

अर्थ–देवताओं का प्रभु और उत्पन्न करनेवाला विश्वका स्वामी महर्षि रुद्रने सृष्टि के आदि में हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया ।

अब एकही उपनिषद् में एक स्थल पर यह लिखा गया कि हिरण्यगर्भ को परमात्मा ने उत्पन्न किया, उसी में दूसरी जगह यह लिखा गया कि वह स्वयं हिरण्यगर्भरूप से पैदा हुआ इन दोनो विरुद्ध वाक्यों की संगति कैसे लगेगी ? इस लिये आपका अर्थ ठीक नहीं है । मंत्र में कहीं भी हिरण्य गर्भ का नाम नहीं, आप ने ऊपर से मिलाया है ।

आप जिस भाव से जातः जनिष्यमाण का अर्थ कर रहे हैं उस भाव से आप के अर्थ पर निम्न लिखित आपत्तियां आती हैं जिसका परिहार आप नहीं कर सकते ।

यह सर्व तंत्र सिद्धान्त है कि श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं । इसीको साफ करने के लिये व्यासजी ने वेदान्त दर्शन लिखा है । पर आपके अर्थ से श्रुतियों में परस्पर विरोध पड़ता है ।

(क) "न तस्य कार्यं करणं च विद्यते" इस श्रुतिका अर्थ पीछे आ गया है । इसमें ईश्वर के शरीर और इन्द्रिय का

निषेध है। यदि जातः=पैदा हुआ। जनिष्य माण=पैदा होने वाला। इन पदों को परमात्मामें मुख्य मानोगे तो उक्त श्रुतिसे जो विरोध होगा, उसका परिहार कैसे होगा ?

(ख) इसी प्रकार "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्य चक्षुः स शृणोत्यकर्णः। सपर्यगात् शुक्र मकायम व्रणम्" इन श्रुतियों से विरोध होगा इसका परिहार कैसे होगा ?

(ग) "न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य" अशब्द मस्पर्शमरूप मव्ययं; इन श्रुतियों से विरोध होगा।

(घ) जन्म निरोधं प्रवदन्ति.यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् (श्वे० ४-२१)। ब्रह्मवादी लोग परमात्मा का जन्म नहीं मानते। इस श्रुतिके साथ भी विरोध होगा परिहार कैसे होगा ?

(च) जो पैदा होता है वह मरता है यदि परमात्मा पैदा होता है, तो वह मरणधर्मा होगा, इसका उत्तर आपके पास क्या है ? यदि कहो कि जीवात्मा तो पैदा होता है, परन्तु मरता नहीं, केवल मरने का उपचार मात्र है वसी प्रकार परमात्मा का भी समझ लें। उत्तर में निवेदन है कि यदि जीवके समान ही परमात्मा का शरीर सम्बन्ध होता है तो शरीर के सम्बन्ध से वह जीवात्मा के समान ही दुःख सुखका भोक्ता हो जायगा। उस समय उसकी ईश्वर सत्ता नहीं हो सकती क्योंकि आप जितने अवतार मानते हैं वे सब दुःखी सुखी सब कुछ देखे जाते है। मत्स्य में तो ब्रह्मके लिये—

जन्म निरोध ही बतलाया गया है तीनों प्रकार के शरीरों का निषेध वेद मन्त्र से दिखला दिया गया है पैदा हुआ और पैदा होगा अर्थ कैसे बनेगा !

मैंने जो आपत्तियां पेश की हैं, उनका उत्तर जब तक नहीं मिलता तब तक कालूराम जी का अर्थ कोई भी बुद्धि मान नहीं मान सकता। श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं है इसके लिये वेदान्तदर्शन में एक सूत्र आया है—"ततुसमन्वयात्" इसी साकार निराकार के झगड़े को निपटाने के लिये वेदान्त दर्शन के तीसरे अध्याय के दूसरे पाद में—न स्थानतोपि पर स्योभय लिंगं सर्वत्रहि-यह सूत्र साकार का खण्डन करके निराकार परमात्मा काही मण्डन करता है। इस;पर पिछले अंकों में पूरा प्रकाश डाला गया है पाठक वहीं देखलें।

इसलिये इसमें जातः और जनिष्यमाण पद ईश्वर के विषय में गौण हैं और परमात्माके व्यापकत्व के बोधक हैं। जब परमात्मा अरूप है, श्रुतिमें उसके जन्मका निषेध आया है तब जातः जनिष्यमाण को बिना गौण माने श्रुतियों की संगति नहीं लग सकती। चूंकि परमात्मा उत्पन्न हुये और उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण पदार्थों में व्यापक है इसीलिये इसके विषय में जातः और जनिष्यमाण पद गौण रूप से आये हैं। बिना ऐसा माने श्रुतियों के विरोधका परिहार नहीं हो सकता और आपके अर्थ सेतो वेदान्त दर्शनका-न स्थान तोपि-यह सूत्रही व्यर्थ हो जाता है। इस लिये कालूरामजी का अर्थ सर्वथा

अशुद्ध है। यातो उन्हों ने श्रुतिको समझा नहीं, यदि समझा है तो जानबूझ कर पाखण्ड खड़ा किया है.जिसका निराकरण भली भांति ऊपर कर दिया गया है!

प्रसंगवशात् यहां पर हिरण्यगर्भ पर भी प्रकाश डालना मैं उचित समझता हूं। हिरण्यगर्भ परमात्मा का भी नाम है परन्तु जहां यह लिखा है कि हिरण्यगर्भं जनया मास पूर्व— हिरण्यगर्भ को परमात्मा ने पहले पैदा किया, वहांपर हिरण्य गर्भ का अर्थ सूर्य है।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् स दाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम। यह मंत्र अथर्ववेद में आया है। सायणाचार्य्य ने इस का अर्थ यों किया है।

सूर्य पहले पहल उत्पन्न हुआ जो सम्पूर्ण प्राणियों का पति अर्थात् पालन करने वाला है। वह पृथ्वी को धारण किये हुये है। उसे सूर्य के लिये हमलोग हवि देवें।

मत्स्यपुराण अध्याय २

अप एव ससर्जादौ तासुबीजमवासृजत्।
तदेवाण्डंसम भवत् हेमरूप्यमयं महत् ॥
संवत्सरसहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभः ॥
तदन्तः भगवानेषः सूर्यः समभवत्पुरा ॥
आदित्यश्चादिभूतत्वात् ब्रह्माब्रह्मपठन्नभूत् ॥

मृतेण्डे जायते यस्मात् मार्तण्डःतेनसंस्मृतः।
रजोगुण मयंयत्तद् रूपं तस्य महात्मनः ।
चतुर्मुखः स भगवान् अभूल्लोक पितामहः ॥
येन सृष्टं जगत्सर्वं सदेवासुरमानवम् ॥

इस उक्तप्रमाण से स्पष्ट है उस अण्डे से सूर्य प्रथम हुआ जो ब्रह्मानाम से प्रसिद्ध हुआ । वही हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध है । आगे पण्डित कालूरामजी ने स्वामीजी के अर्थ पर आक्षेप किया है। स्वामीजी ने जातः का अर्थ प्रकट होना किया है इस पर आप लिखते हैं:—

जातः और जन्म ये दोनों शब्द " जनी प्रादुर्भावे " धातु के हैं। और दोनों ही का पैदा होना अर्थ है जब तुम जीव को "जातः" कहोगे तो हम उसमें भी प्रकट होना अर्थ लगा देंगे। याद रखो तुम्हारी चालाकियां अब चलने की नहीं, शरीर धारण करने को ही प्रकट या जन्म कहते हैं।

समीक्षा-जातः और जन्म यद्यपि दोनों शब्द "जनी प्रादुर्भावे" धातु से बने हैं परन्तु सर्वत्र जन्म लेने के अर्थ में इसका प्रयोग नहीं होता " स मूर्खो जातः " इस वाक्य में जातः का अर्थ जन्म लिया कौन करेगा ? यहां जातः का अर्थ " होगया " यही करना पड़ेगा । शरीर धारण करने को ही प्रकट या जन्म कहते हैं, आपकी यह दलील भी ग़लत है। उसे क्षुधा नहीं लगती थी, पर जब दवा दी गई तो भूख पैदा होगई। यहाँ पर पैदा होने का प्रयोग निराकार भूख में भी देख

जाता है। गर्मी से उसके सर में दर्द पैदा होगया। क्या दर्द को भी कोई शरीर होता है?

आप लिखते हैं कि जब तुम जीवको "जातः" कहोगे तो हम भी वहां प्रकट होना अर्थ कर देंगे। पर इससे हमारे पक्षकी कौन सी हानि है? जीवात्मा तो सत्यतः पैदा होता ही नहीं, वह तो प्रकट ही होता है। क्या जीवात्मा पैदा होता है! यह कहां का सिद्धान्त है? पैदा तो शरीर होता है, जीवात्मा नहीं। इस लिये आपकी सम्पूर्ण दलीलें बालकों की सी हैं इससे अवतार सिद्धि नहीं हो सकती।

दयानन्द स्वीकृताध्याय की समीक्षा।

इस अध्याय में आपने स्वामी जी के अर्थों पर से ईश्वर के साकार होने का प्रमाण पेश किया है। यह भी आपकी चालाकी ही है।

जो ब्रह्म को सर्वथा निराकार मानता हो, साकार का खण्डन करता हो, उसके लेख के शब्दों को खींचतान करके उससे साकार सिद्ध करने का ढोंग रचना पाखण्ड नहीं तो क्या है?

स्वामीजी ने प्रथम समुल्लास में राहु शनैश्चर मंगल आदि शब्दों की व्युत्पत्ति से उन्हें ईश्वर वाचक भी बतलाया है। उन्हीं अर्थों पर से आपने कुतर्क के द्वारा ईश्वर को साकार सिद्ध करने का ढोंग कियाहै।

पाठको ! जहां पर ये लाल बुझक्कड लोग यह कहें कि ईश्वर निराकार तो है, पर साकार भी हैं वहां आप तुरन्त वेदान्त दर्शन अ० ३ पाद २ के उन सूत्रोंको सामने रख दीजिये जिनका पूरा विवरण मैंने पृ० ६० से ६६ तक में दिया है। इनके सामने आते ही इनके साकारवाद की भित्ति पिघल कर स्वयं गिर जावेगी।

स्वामीजीने मंगलाचरण में "त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि" इसका अर्थ "तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है" ऐसा किया है जिस पर से आपने प्रत्यक्ष शब्द को लेकर उछल कूद मचाया है। आप लिखते हैं कि प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो इन्द्रिय ग्राह्य हो ऐसा ही लक्षण शास्त्र कारों ने प्रत्यक्ष का किया है।

इनसे इधर उधर की बात न करके एक बात यह पूछ लेनी चाहिये कि बतलाओ जीवात्मा का प्रत्यक्ष आपको है? क्या आपने जीवात्मा को आंख से देखा है?

इसका जो उत्तर ये देंगे उसी में फँसेंगे। यदि कहें कि जीवात्मा को आंख से नहीं देखा है तब कहिये कि जब जीवात्मा ही प्रत्यक्ष नहीं तब परमात्मा का प्रत्यक्ष बतलाना मूर्खता है या नहीं? जिस जीवात्मा के क्रिया कलापको बराबर देखा जाता है, उसीको जब आंख से आज तक किसीने नहीं देखा तो उसके प्रभु को, जो सूक्ष्माति सूक्ष्म है, आंख से देखने की बात बोलना नादानी है या बुद्धिमानी, पाठक स्वयं इसका विचार करलें।

यदि कहें कि शरीर के साथ तो प्रत्यक्ष ही है उसको यद्यपि नहीं देखते, परन्तु उसके कर्म को तो देखते हैं। यदि शरीर के अन्दर वह न होता तो शरीर में क्रिया कहां से दिखलाई देती? तब आप कहिये कि यदि इस प्रकार के प्रत्यक्ष से आपका अभिप्राय हो तो हमें कोई उज्र नहीं।

जैसे जीवात्मा के इस शरीर के अन्दर रहने से शरीर में सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं, उसी तरह इस ब्राह्मण्ड मे परमात्मा की सत्ता से सम्पूर्ण क्रियायें होती हैं। उपनिषद् के प्रत्यक्ष से यही तात्पर्य्य है।

वास्तवमें उपनिषद् में आये हुये "प्रत्यक्ष" शब्द का यही तात्पर्य्य है। भिन्न भिन्न शास्त्रों में एक ही शब्द की भिन्न भिन्न परिभाषा होती है। न्याय ने बुद्धि और ज्ञान इन दो शब्दों को एकार्थक माना है। जो अर्थ बुद्धि का है वही अर्थ ज्ञान का है परन्तु इसके पूर्व के ग्रन्थों में ऐसा नहीं माना गया है। बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ मनुः॥ बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है॥ मनु॥ यहां पर इन दोनों को पृथक् पृथक् माना है। अब दो आदमी दोनों के मत को लेकर आपस में भिड़ जायं और अपने अपने मत पर डटे रह जायँ तो सिवाय सिर फोड़ौव्वल के और क्या परिणाम होगा।

वास्तव में दोनों का कथन ठीक है परन्तु दोनों ने अपने अपने शब्दों की व्याख्या भिन्न भिन्न प्रकार से की है। न्याय ने तो यह कहा कि ज्ञा धातु का जो अर्थ है वही बुध् धातुका

है। दोनों का अर्थ होता है "जानना"। जिससे जाना जाता है उसे बुद्धि या ज्ञान कहते हैं। बुध् धातुसे बोध और ज्ञा धातुसे ज्ञान शब्द बना है। इस लिये दोनों का अर्थ एक है। दोनों शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं।

अब उपनिषद् विभाग में गौतम के न्याय प्रतिपादित निरुक्ति को लेकर चलियेगा तो "बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति" इसकी संगति ही न लगेगी। क्योंकि इसने बुद्धि और ज्ञानको दो शब्द भिन्नार्थक माना है। उपनिषद् विभाग में बुद्धि को मन का एक भाग ही माना है। यह ऐसा है अथवा नहीं है इस प्रकार संकल्प विकल्प करने वाली वृत्ति का नाम मन है। यह ठीक ऐसा ही है अन्यथा नहीं हो सकता, मनके इस वृत्ति का नाम बुद्धि है।

वेदान्तके अनुसार मन प्राकृतिक है अतः नश्वर है। पर ज्ञान नित्य है। अपनी इस निरुक्ति से वेदान्त बुद्धि को ज्ञान से भिन्न मानता है।

जब शब्दों के अर्थों का ऐसा भेद आप देख रहे हैं तो सर्वत्र एक शब्द का एक ही अर्थ खींचतान कर प्रकरण विरुद्ध करना पाण्डित्य नहीं किन्तु बड़ा भारी जाल है। गौतम के प्रत्यक्ष का अर्थ गौतम के साथ रखिये। वेदान्त में आये "प्रत्यक्ष" शब्द का अर्थ यदि न्याय में बतलाये "प्रत्यक्ष" शब्द के अर्थ के समान करियेगा तो-न स्थानतोपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि॥ अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्॥ आह चैतन्मा-

श्मू'' वेदान्त के इन सूत्रों से विरोध होगा। जिसका परिहार कोई भी पण्डित इस जन्म तो क्या सौ जन्म में भी नहीं कर सकता।

इसलिये उपनिषद् में आये प्रत्यक्ष का अर्थ वही लेना होगा जैसा मैंने ऊपर दिखलाया है। उपनिषद् का "प्रत्यक्ष शब्द" परमात्मा विषय में सापेक्ष है जैसे जीवात्मा का प्रत्यक्ष शरीरापेक्षा से है उसी तरह परमात्मा का प्रत्यक्ष ब्रह्माण्डापेक्षा से है। किन्तु गौतम के प्रत्यक्ष के अर्थ के समान जब जीवात्मा ही प्रत्यक्ष नहीं है तो परमात्मा का प्रत्यक्ष तो बहुत दूर है इस लिये पं० कालूराम का कथन किसी प्रकार भी संगत नहीं है।

स्वामीजी ने मंगल शब्द की व्युत्पत्ति गत्यर्थक :मगि धातु से की है।

इसे देखकर आप कहते हैं कि चलना क्रिया का प्रयोग तो साकार ही में होता है। यदि परमात्मा को साकार न माना जायगा तो चलना क्रिया निराकार में कैसे घटेगी ? चलना शरीर धारी में ही हो सकता है निराकार में नहीं।

समीक्षा-परमात्मा में "चलना क्रिया" भी सापेक्ष मानी गई है, निरपेक्ष नहीं।

मैं अपनी दलील अथवा प्रमाण न देकर इनके पक्ष का ही प्रमाण पेश करता हूं। क्योंकि पं० कालूराम जी वितण्डावाद में बड़े निष्णात हैं उनके लिये अपनी दलील पेश करने के बजाय उन्हीं के आचार्य्यों की दलील पेश कर देना ही पर्याप्त होगा।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्ति के।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

इसका अर्थ महीधर यों करते हैं:—

वह चलता है, वही नहीं चलता है अर्थात् अचल होता हुआ भी मूर्खों की दृष्टि में चलता है। वह दूर है अर्थात् वह मूर्खों से दूर है जो करोड़ों वर्षों में भी उसे नहीं पासकते। वही विद्वानों के लिये समीप में है इत्यादि।

महीधर कहते हैं कि जो उसको चलता समझता है वह मूर्ख है अब पं० कालूराम जी अपना पोजीशन साफ करलें। ऐसे ही स्वामी शंकराचार्य्य आदि आचार्य्यों ने भी ब्रह्म में गमन किया, ह्रस्व दीर्घत्व अणुत्व आदि सापेक्ष माना है न कि स्वतः निरपेक्ष। परन्तु पं० कालूराम को इससे क्या प्रयोजन? उन्हें तो अपनी बहकी हुई भेड़ों को जोड़ बटोर कर अपने गल्ले में रखने की चिन्ता है, तब हेत्वाभास से सत्यता का गला न घोटेंगे तो क्या करेंगे।

परमात्मा स्थावर और जंगम दोनों प्रकार के पदार्थों में मौजूद है। इन्हीं के चलने और न चलने की अपेक्षा से परमात्मा में चलने का आरोप कर लिया जाता है। जगम प्राणी चलते हैं इसलिये उनकी अपेक्षा से उसमें भी चलना का अध्यारोप हो जाता है क्योंकि वह उसमें भी ओत प्रोत है। परन्तु वास्तव में वह एक रस कूटस्थ अचल है!

जहां कहीं परमात्मा के विषय में चलने का, पैदा होने का,

छोटे का, बड़े का, आकार का, वर्णन मिले वहाँ वहाँ पर प्राकृतिक वस्तुओं की अपेक्षा से ही वैसा वर्णन समझना चाहिये जैसा कि पहले समझा दिया गया है।

आगे आप लिखते हैं—

स्वामीजी ने केतु नाम परमात्मा का माना है और केतयति चिकित्सति वा केतु रीश्वरः। जब वह घर घर चिकित्सा करता फिरता है तो वह साकार क्यों नहीं? हमें तो अच्छा सिविल सर्जन मालूम पड़ता है। मालूम नहीं आनरेरी है या फ़ीस लेता है—

समीक्षा-केतु का अर्थ स्वामीजी ही ने ईश्वर नहीं किया है किन्तु महीधरने भी यजु० ४-३१ में केतु का अर्थ प्रज्ञानघन किया है जो शब्द परमात्मा वाचक हैं। उन्हों ने " केतु इति प्रज्ञानाम" इस प्रमाण से अपना अर्थ किया और स्वामी जी ने कित् धातु के बल पर अपना अर्थ किया परन्तु इसमें कोई ऐसी बात न थी जिससे आप ईश्वर को साकार कहते। परमात्मा तो बड़ा भारी चिकित्सक है। सिविल सर्जन ही नहीं, उसका उत्पादक है। उसी से करोड़ों सिविल सर्जन पैदा होते हैं। चलना क्रिया उसमें सापेक्ष है यह ऊपर बतला दिया गया है।

(५) राहु नाम भी ईश्वर का लिखा है। राहु शब्द भी रह त्यागे धातु से बनाया है। अर्थात् जो दुष्टों को त्याग दें। क्योंजी कैसे त्यागता कहां त्यागता होगा। अपनी सीमा से

बाहर कर देता होगा। गोया एक देशी परमेश्वर है। जब कि एक देशीय है तो सर्व व्यापक नहीं हो सकता। अतएव वह साकार साबित है।

समीक्षा—भूत वही जो सिरपर चढ़कर बोले। आपहमपर आक्षेप कर रहे थे। पर स्वयं आक्षेप से लद गये। आपने दूसरे के खण्डन में सनातन धर्मके सिद्धान्त का ही खण्डन कर डाला। आपने यह मानलिया कि साकार एक देशीय होता है। परमात्मा एक देशीय है इसलिये साकार है। यह आपका सिद्धान्त हुआ। परन्तु क्या परमात्मा को एक देशीय किसी शास्त्रने माना है क्या सनातन धर्म का यही सिद्धान्त है कि परमात्मा एक देशीय है? कैसे मकड़ी के समान अपने ही जाल में फँसगये। कुतर्कका परिणाम ही यह होता है।

आप पूछते हैं कैसे कहां त्यागता होगा वह ठीक उसी तरह त्यागता है जैसे प्रतिनिधि ने आपको त्याग दिया है कालूराम चिल्लाया करे गाली बका करें पर उससे शास्त्रार्थ मत करो क्योंकि उसका धर्म पैसा है। प्रतिनिधि मेरठ में है आप कानपुर में। किस तरह छुट्टा छुट्टी होगई? इसी तरह परमात्मा भी उसका त्याग कर देता है। उसका अप्रसन्न होना ही त्यागना है। अब बात समझ में आई कि नहीं? इसी कुतर्क की बदौलत पं० कालूराम जी अन्धों में काने राजा बने बैठे हैं।

(६) तमीशानं जगतः—इस मंत्र के अर्थ में स्वामीजी

लिखते हैं पूषा-सबके पोषक हो। उन आपका हम अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं। इतना लिख कर आपने आक्षेप किया है कि आह्वान किसी साकार पदार्थ ही में होगा अतः एव वह मूर्तिमान् और साकार है।

समीक्षा—तर्क शिरोमणि पं० कालूराम जी के बालकवत् तर्कका यह भी एक नमूना है। न मालूम इन्होंने गुरु से तर्क शास्त्र पढ़ा है अथवा यों ही ब्राह्मण सम्मेलन के सम्पादक उन्हें तर्क शिरोमणि की उपधि देते फिरते हैं ? लोग मृत्यु को पुकारते हैं, नींद को पुकारते हैं। यह संस्कृत ही नहीं सम्पूर्ण भाषाओं में देखा जाता है। क्या मृत्यु और निद्रा साकार हैं ? जिन्हें इतनी भी साधारण बुद्धि नहीं उन्हें तर्क शिरोमणि की उपाधि देना तर्कशास्त्र का गला घोटना है। पं०कालूरामजी शब्दोंकी खींचतान खूब करना जानते हैं। आप लिखते हैं कि हम तो अपने साकार परमात्मा को पुकारते हैं पर तुम निराकार को कैसे पुकारते हो ?

भगवन ! परमात्मा तो साकार है ही नहीं स्थूल सूक्ष्म कारण तीनों शरीरों से वह रहित है फिर बार बार उसे साकार लिखने से क्या प्रयोजन ? क्या आप का अभिप्राय पौराणिक विष्णु से है जो मेरुपर्वत पर रहता है, जिसके चार चार औरतें हैं, व्यभिचार करता फिरता है असुरों से युद्धमें भागा फिरता है ? यदि हां तो वह साकार ईश्वर आप को ही मुबारक रहे।

हम परमात्मा को प्रेम में विह्वल होकर उसी तरह पुकारते हैं जिस प्रकार एक दुःखी आदमी सांसारिक यातनाओं से पीड़ित होकर मृत्यु को पुकारता है। क्या मृत्यु साकार है? कहिये पण्डित जी इसमें आपको कुछ आपत्ति है?

इस प्रकार शब्द के खींचतान से अवतार सिद्धि न होगी। न तो साकार की सिद्धि होगी। यहां पर आह्वान का अर्थ पुकारना या बुलाना नहीं है, किन्तु स्तुति करना है। वेद में ह्वामहे स्तुमः आदि सब एकार्थक हैं परन्तु कालूराम जी हिन्दी के अर्थ को लेकर पाखण्ड करते हैं जो अत्यन्त अनुचित और निन्दनीय है।

(७) अदिति द्यौरदिति इस मंत्र के अर्थ में स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (विनाश भूत) कभी होता है।

आर्या भि० मंत्र १० पूर्वार्ध

यहां पर (विनाश भूत) पद को लेकर आपको आपत्ति है। यह छापे की अशुद्धि है।

जब कि मंत्र के आरम्भ में स्वामी जी ने "अदिति" का अर्थ विनाश रहित किया है तो यहां पर विनाश भूत किस प्रकार लिखेंगे इतना ही नहीं इस मंत्रके अर्थ में तीन स्थान पर परमात्मा को अविनाशी लिखा है इसलिये यह छापे की गलती है। आपनेजानबूझकरपाखंड खड़ा किया है जैसा कि कलियुगी

ब्राह्मणों का धर्म है। देवी भागवत का वचन (ये पूर्व राक्षसा राजन्) असत्य नहीं है वह आप ही सरीखे लोगों पर घटता है।

(८) "सोमरा रन्धिनो" इस मंत्रके अर्थमें स्वामीजी ने लिखा है कि हे सोम्य आप कृपा करके हमारे हृदय में यथावत् रमण करो। इस पर आपत्ति यह करते हैं कि "रमण शब्द रमु क्रीडायाम् धातु से बना है। निराकार खेल खेले, क्या खूब, और आप उसे निराकार ही बतलावें। मित्रवर खेल खेलने वाला तो साकार ही होता है--

समीक्षा—यदि इसी तरह शब्द को तोड़ मड़ोर कर ईश्वर की साकारता सिद्ध होने लगे तब तो सम्पूर्ण वेदान्त शास्त्र पर पानी फेर देना पड़ेगा। क्यों जी कालूराम जी, "न स्थानतोपि परस्योभयलिंगं सर्वत्र हि, अरूपवद् हि तत्प्रधानत्वात् आह च तन्मात्रम्।"

वेदान्तके इन उक्त सूत्रोंकी क्या गति होगी, यदि शब्दों के तोड़ मड़ोर से ईश्वर की साकारता सिद्ध करने लगियेगा? क्या वेदान्त के इनसूत्रों पर पानी फेरना चाहते हो?

क्रीड़ा करना, रमण करना, खेलना इन शब्दों पर से ईश्वर की साकारता सिद्ध नहीं हो सकती। शाब्दिक अर्थों के सिवाय लाक्षणिक अर्थ भी धातुओं के होते हैं। प्रकरण के अनुसार उनका अर्थ करना ही बुद्धिमानी है। वेद में आया है "अग्ने शर्ध" शृधु कुत्सित शब्दे। शृध धातु का

अर्थ अधोवायु त्याग करना है। अब यदि कालूराम जी सरीखे कोई ईसाई मुसलमान इस पद को पढ़ कर उनके सामने यास्वर्थ लेकर यह अर्थ करे हे अग्ने तुम अधःवायु छोड़ो तब आप उसका वैसाही अर्थ मान लेंगे ? या लक्षणिक अर्थ करके वहां पर शास्त्रानुसार संगति विठलावेंगे ? "शप आक्रोशे" शप का अर्थ शापदेना। परन्तु वेद में इसका अर्थ हिंसा करनेके अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और आप के आचार्यों ने की है यजु० ६, २२। क्या हम पूछ सकते हैं कि शाब्दिक अर्थ के विरुद्ध अर्थ क्यों लिया गया ?

पण्डित कालूराम लिखते हैं कि वह किस स्वरूप से आप के हृदय में क्रीड़ा करता है स्टुडेंटाना ढंग से फुटबाल या क्रिकेट खेलता है या शतरंज की वाज़ी बिछी है। मित्रवर, खेल खेलने वाला तो साकार ही होता है।

यदि आपके इस मज़ाक का उत्तर उसी रूप में दूं तो यह आपको बुरा न लगेगा। रम् धातु से रत रति, सुरति शब्द बनता है। पण्डित कालूराम जी मैदान में अपने लड़कों के साथ खेल रहे हैं। यदि इसी वाक्य को मैं यों कहूं कि पण्डित कालूराम जी मैदान में अपने लड़कों के साथ रति कर रहे हैं तो शायद कुछ बेजा न होगा क्योंकि "रमु क्रीड़ाया" इसी धातु का प्रयोग है, अन्य का नहीं। कहिये तो निम्न लिखित श्लोक में "रमु क्रीड़ायां" धातु का अर्थ खेल करना है या और कुछ ?

उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरग पतौ पाणिने केन कृत्वा धृत्वा चान्येन वासो विगलितकबरीभारमंसे वहन्त्याः। भूयस्त-त्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः शय्यामालिंग्यनीत' वपुरलसलसद्बाहुलक्ष्म्याः पुनातु॥

कहिये लक्ष्मीजी रति के समय क्या फुटबाल खेलती थीं?

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुंक्ते कान्तेव चापि रमयत्यपनीय खेदम्॥

यहां रमयति का अर्थ क्या खेलना कीजियेगा? या आनन्द देना है?

रमन्ते योगिनो यस्मिन् स रामः। यह अर्थ आप लोग करते हैं। क्या राम में सब योगी लोग फुटबाल शतरंज या ताश खेलते हैं? कहिये आप खेलते हैं या नहीं?

आप कहते हैं कि खेलने वाला साकार ही होगा। क्या आप कह सकते हैं कि विद्या साकार है? अथवा मन साकार है? क्योंकि लिखा है। मनो न रमते स्त्रीणां जराजीर्णेन्द्रिये पतौ। स्त्रियों का मन वुड्ढे पति में आनन्द नहीं पाता।

इस लिये आप धातु को ग्रहण करके, उसके सहारे कुतर्क का आश्रय लेकर ईश्वर की साकारता सिद्ध नहीं करते। जब जीवात्मा ही साकार नहीं तो परमात्मा को साकार कहनेवाले को क्या कहाजाय। सो जाने पर जीवात्मा अन्तर्जगत में क्या क्रीड़ा नहीं करता है? जब शरीर रहित जीवात्माकी क्रीड़ा का अनुभव हम लोग स्वयं करते ह तो परमात्मा की क्रीड़ा पर शंका क्यों?

मैं आप से पूछता हूं कि यदि क्रीड़ा करने के कारण ईश्वर साकार हो गया तो बतलाओ हृदय में वह साकार कैसे प्रवेश करेगा? उस साकार का रूप रंग क्या है? कितना बड़ा है? उसका शरीर काहे का है? किधर से घुसता है? आप में घुसा है या नहीं? यदि घुसा, तो बतलाइए किधर से घुसा, आप को कुछ दर्द हुआ या नहीं? इन प्रश्नों का उत्तर आप के पास क्या है?

आप शास्त्र की बातों को छोड़ कर कुतर्क अधिक जानते हैं अतः "जैसा मुंह वैसा थपरा" मुझे भी आप के मार्ग का अनुसरण करना पड़ा। क्षमा कीजियेगा।

यहां पर रमण करो का भाव तो यह है कि हमारे हृदय में विराजिये। जिससे हृदय का अन्धकार दूर होकर प्रकाश हो। अच्छा, अब आगे आप के कुतर्क का नमूना और लीजिये।

स्वामीजी ने "यो विश्वस्य जगतः" इस मंत्र के अर्थ में लिखा है—वह परमात्मा डाकुओं को नीचे गिराता है तथा उसको मारही डालता है। हम लोग उसे बुलावें।

इस पर आपने फिर वही अपनी आदत से कुतर्क का सहारा लिया है। आप लिखते हैं कि परमात्मा पहलवानों और डाकुओं को मारता फिरे फिर भी वह निराकार ही। भाई कालूराम जी, वायु तो बड़े बड़े वृक्षों तथा पर्वतों को उड़ा डालता है, तोड़ कर बरबाद कर देता है। परमात्मा तो सृष्टि को उत्पन्न करता, पालन कर्ता तथा संहार कर्ता है।

उसका सब काम विना शरीर के ही होता है। माताके पेट में क्या कोई शरीर धारण करके बच्चे का शरीर गढ़ता है, या आज कल जितनी चीजें सृष्टि में पैदा होरही हैं, वह सब शरीर धारण करके बनाता है अथवा अपनी श्यक्ति से ? थोड़ी सी बुद्धि वाला भी इसे भली भांति जानता है परन्तु आप तर्क शिरोमणि होकर ज़री ज़री सी बातपर ठोकर खाते हैं। क्या यही आप के तर्क का नमूना है ? जिसने डाकुओं को बनाया, उसके मारने के लिये फिर शरीर की आवश्यकता ? क्या डाकू के शरीर को बनाने के समय उसे साकार होना पड़ा था ? पण्डित जी, व्यर्थ कुतर्क क्यों करते हैं ? इससे अवतार सिद्धि न होगी, न तो साकारता ही सिद्ध होगी हां गांठ के पूरे यजमान फँस जायँ तो फँस जायँ, परन्तु इस कुतर्क के आश्रय से साकारता सिद्ध नहीं हो सकती।

बुलाने या पुकारने मात्र से वह साकार नहीं हो सकता। आपकी यह दलील भी बच्चों की सी है। लोग अपनी मृत्यु को बुलाते हैं, पर वह साकार नहीं, माता अपने बच्चों को सुलाने के लिये लोरियां देती है—कि आजा निन्दिया आजा निंदिया, पर वहभी साकार नहीं इसे देखते हुये जानते हुये भी केवल "बुलाने" शब्द पर से उसे साकार सिद्ध करने लगे। पण्डित जी, जरा सोच समझ कर कलम उठाया करिये। ऐसी दलील क्यों रखते हैं जिससे आप के तर्क शिरोमणित्व की पोल खुले। संकट में सबही परमात्मा को पुकारते हैं।

ह्वामहे का अर्थ चाहे आप बुलाना करें चाहें पुकारना करें दोनों एक ही बात है।

१०-स्वामीजी ने लिखा है सूर्यवत् हमारे हृदय में प्रकाशित होओ इस पर आपने लिख मारा कि यहां तो स्वामीजी स्पष्ट ही ईश्वर को साकार मान बैठें।

समीक्षा—गँवारों को फंसाने के लिये आपकी दलील तो ठीक है परन्तु थोथी दलील को देखकर कोई भी तार्किक आपको तर्क शिरोमणि तो नहीं कह सकता हां गंवार या चापलूस लोग भले ही आपको तर्क शिरोमणि कहें, या तर्क वागीश कहें सब ही उचित है।

पाठको, जब आदमी के पास कोई प्रमाण अपने सिद्धान्तकी पुष्टि में नहीं मिलता तो ऐसे ही उटपटांग, विना सिर पैर की दलीलें गँवारों को फंसाने के लिये रखता है। इनसे पूछना चाहिये कि उपमा एक अंश में होती है या सर्वांश में यदि कहें कि सर्वांश में तो फिर उपमा और उपमेय ही कैसे बनेगा? दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक में सिवाय विवक्षितांश के कोई भी विद्वान सर्व सारूप्य नहीं दिखला सकता। क्योंकि जहां पर सर्व सारूप्य होगा वहांपर दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक की सत्ता का उच्छेद ही हो जायगा।

यहां पर विवक्षितांश सारूप्य क्या है इसे समझ लेना चाहिये जिस प्रकार सूर्य्य अपने प्रकाश से बाह्य जगत के अन्धकार को दूर कर देता है। उसी प्रकार आप हमारे हृदय

के अविद्या अन्धकार को दूर करो। स्वामीजी ने स्पष्ट लिखा है—सूर्यवत् हमारे हृदय में प्रकाशित होओ जिसे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो। परन्तु आपको साकारता की सिद्धि की धुन सवार है, वह चाहे, उचित रीति से हो, चाहे अनुचित रूप से हो आपको इससे क्या?

११-"मानोवधीरिन्द्रमा" इस मंत्र पर स्वामीजी लिखते हैं कि हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चुरवा। इस पर आपका आक्षेप केवल इतना ही है कि पदार्थों की चोरी करना बिना शरीरधारी के हो ही नहीं सकता। इसके सिवाय आपने वही मज़ाक का मार्ग ग्रहण किया है आप लिखते हैं कि वह अकेला ही चोरी नहीं करता किन्तु दशबीस लँगोटिये यार और गुण्डे भी साथ में हैं उनसे भी चोरी करवाता है।

समीक्षा—ब्राह्मण सम्मेलन के सम्पादक ने पं० कालूराम को सम्पादक शिरोमणि की उपाधि दे रखी है। मैं सम्पादक से पूछता हूं कि यह कहां का तर्क है कि चोरी करना बिना शरीरधारी के हो ही नहीं सकता। यदि काव्य का अवलोकन किये होते तो शायद इस प्रकार कुतर्क करके अपने पाज़ीशन को खराब न करते।

नास्त्यन्या तृष्णया तुल्या कापि स्त्री सुभगा क्वचित्। या प्राणानपि मुष्णन्ती भवत्येवाधिका प्रिया॥ तृष्णाके समान कोई भी स्त्री सुभगा नहीं है जो प्राणों को चुराती हुई भी अधिक प्रिय लगती है।

इस श्लोक में तृष्णा को चोरी करनेवाली लिखा हुआ है। पण्डित कालूराम जी बतलावें कि क्या तृष्णा को कोई शरीर होता है? वह पं० कालूराम जी सरीखे काले रंग की है या गोरे रंग की। उसकी कमर मोटी है या पतली? वह पण्डित कालूराम जी के मन को दक्षिणा के लिये कैसे चुरा लेती है। पण्डित कालूराम जी के शरीर में वह किस मार्ग से घुसी है? पाठक उनसे पूछें और जवाब लें।

(१२) अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूप यामि। यजुर्वेद के अध्याय ३७ मंत्र ६ के भाष्य में स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि ईश्वर घोड़े की लीद से मनुष्य को तपाता है।

इस पर आपने बहुत से मजाक के बाद लिखा है कि यदि घोड़ों की लीद उठाने वाला निराकार है तो घोड़े पर खुरैरा फेरने वाला भी निराकार ही होगा। शायद समाजियों की दृष्टि में घोड़ा भी निराकर ही निकले।

समीक्षा—दूसरों पर आक्षेप करने के पूर्व पहले अपने पक्षकी पुष्टि की व्यवस्था करना बुद्धिमानों का काम है। पर जो दूसरे पर आक्षेप तो करदे और दूसरे की मजाक उड़ावे, अपने ऊपर आनेवाले आक्षेप का लेशमात्र भी ध्यान न रखें, उससे बढ़ कर मूर्ख कौन हो सकता है? देखिये आपके आचार्य्य महीधर जी क्या अर्थ करते हैं:—

दक्षिणाग्नि दीप्तेन अश्वपुरीषेण त्रिभिर्मंत्रैः त्रीन् महावीरान् धूपयेत्। एकैकधूपने सप्त सप्ताश्व शकृन्ति गृह्णाति। हे महा-

वीर पृथिव्याः देवयजने मखाय मखस्य शीर्ष्णे च वृष्णः सेकृतुः अश्वस्य सक्ना पुरीषेणत्वां धूपयामि ॥

दक्षिणाग्नि से दीप्त घोड़े की लीद से तीन मंत्रों से तीन महावीरों को तपावे। एक एक के तपाने में सात सात घोड़े की लीद लेनी चाहिये। हे महावीर इस वेदी पर घोड़े की लीद से तुमको तपाता हूं। इत्यादि।

पाठको आप जानते हैं कि महावीर कौन है? यह महावीर कालूराम शास्त्री के ईश्वर हैं। इसका प्रमाण भी दे देना आवश्यक है। एकवार हमारे और पण्डित कालूराम शास्त्री के मध्य वहहलगंज में मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ था। उसका जिक्र करके आपने जनवरी सन १९३० ई० अंक ६ में अपनी पण्डिताई की डींग मारी है। वह यह है:—

अब मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। हमने शतपथ ब्राह्मण में लिखी हुई महावीर नामक मूर्ति का प्रकरण उठाया। चौधरी जी ने कहा कि महावीर मूर्ति का नाम नहीं, पात्र का नाम है। यह प्रजापति की मूर्ति नहीं है वास्तव में पात्र है तो फिर आप इसका उत्तर दें......इत्यादि।

मैंने महावीर के पात्र होने के विषय में एक लेख सद्धर्म प्रचारक १ मई सन् १९३० के अंकमें निकाला था, और कालूरामजी को उसका उत्तर देने के लिये चैलेंज दिया था और अब भी है, परन्तु आपने उसका उत्तर आज तक न दिया और न कोई सनातनी दे सकता है। वही उत्तर देगा जो उसे पात्र विशेष माने हमारे यहां वह पात्र बनवा कर रखा गया है।

अक्टूबर सन १९३० अं० ५ के पृ० १०० में भी आप का लेख है कि महावीर ईश्वर की मूर्ति है।

ऊपर के लेख से आप लोगों को यह पता लग गया होगा कि पण्डित कालूराम महावीर नामक पात्र को प्रजापति की मूर्ति मानते हैं! पात्र नहीं मानते।

जब आप के ईश्वर प्रजापति को तपाने के लिये घोड़े के लीद की आवश्यकता पड़ती है। बिना घोड़े की लीद के बेचारे का जाड़ा नहीं जाता तो हमारा निराकार ईश्वर यदि आप के जड़ ईश्वर को तपाने के लिये लीद जमाकर देता है तो आपत्ति काहे की। उस निराकार की शान में अपशब्द बोलने का आवश्यकता ही क्या थी। आपने लिखा है कि वह तुम्हारा निराकार ईश्वर सब आर्य समाजियों को तपाता है या खास खास व्यक्ति को। रोज़ रोज़ तपाता है या समाज के वार्षिकोत्सव पर। घोड़े की लीद खुद ही कर लेता है या किसी तबेले से बटोरता है इत्यादि।

उत्तर में निवेदन है कि वह देवयजन में—यज्ञ में-आपके ईश्वर प्रजापति को सर्दी से बचाने के लिये, किसी तबेले से ही नहीं सम्पूर्ण तबेलों से एकत्र जमा कर देता है परन्तु इतने पर भी वह निराकार ही बना रहता है। आप कहियेगा कि यह हो नहीं सकता। मैं कहता हूँ कि आप की बुद्धि ही बहुत मन्द है नहीं तो इतनी छोटी सी बात आपके ध्यान में अवश्य ही आगई होती। जब निराकार वायु बड़े बड़े वृक्षों को

तोड़ डालता है और सारे शहरका कचरा उड़ाकर अमरौंधे में जमा कर देता है तो फिर यदि उसक वायु का भी कारण, परमात्मा वायु वत् अपनी व्यापक शक्ति से घोड़े की लीद को आपके ईश्वर को तपाने के लिये यज्ञ के पास जमा कर देता है तो आपको इसमें क्या आपत्ति है जब घोड़े के पैदा करने में उसे शरीर की आवश्यकता न पड़ी तो उसकी लीद बटोरने में कैसी आवश्यकता ? इसका जवाब आप के पास क्या है।

यह हुआ आप के कुतर्क का मुंह तोड़ उत्तर। अब स्वामीजी के अर्थों पर विचार कीजिये। लोग इस मंत्र के अर्थ को पढ़कर मजाक उड़ाया करते हैं परन्तु स्वाध्याय के अभाव के कारण लोग स्वयं इस तत्व को नहीं जानते। पाठक वृन्द चरक सहिता उठाकर पढ़ें। अर्श रोग प्रकरण चिकित्सा स्थान १४ अध्याय श्लोक ४२ व ४६। इनमें घोड़े की लीद से तपाने से अर्श रोग का निवारण होना लिखा है। सबसे बढ़िया और पं० कालूराम जी को भी अपील करने वाला प्रमाण गरुड पुराण अ० १६३ में लिखा है। तारीफ इसमें यह है कि यह बात स्वयं विष्णु ने शिव से कहा है। श्लोक ये हैं:—

कूर्म मत्स्याश्च महिष गो शृगालाश्च वानराः।
विडाल वर्हिकाकाश्च वराहोलूक कुक्कुटाः॥
हंसा पर्णां च विण्मूत्रं मांसं वा रोमशोणितम्।
धूपं दद्या-ज्ज्वरार्तेभ्यः उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये॥१५॥

एतान्योषधजातानि कथितानि उमापते।
निघ्नन्ति तांश्च रोगांश्च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥१६॥

अर्थ—विष्णुजी महादेवजी से कहते हैं कि कछुवा, मछली घोड़ा महिष गाय शृगाल वानर, बिडाल मोर काक शूकर उल्लू मुर्गा और हंस इन प्राणियों की विष्ठा, मूत्र, मांस, रोम रक्त आदि से ज्वर से पीड़ित और उन्माद ग्रस्त रोगी को धूनी देवे तो वे रोग ऐसे शान्त हो जाते हैं जैसे वज्र के मारने से वृक्ष का नाश हो जाता है। अर्थात् उन्माद रोग जड मूल से नष्ट हो जाता है।

कहिये पं० कालूराम जी, स्वामी जी का अर्थ ठीक है या गलत? घोड़े की लेंड़ी से महावीर को तपाना अर्थ ठीक होगा या जिस किसी मनुष्यको उन्मादादि रोग हो, उसे घोड़े की लीद से तपाना। कौनसा अर्थ युक्ति युक्त प्रतीत होता है। आशा है कि अब आपमज़ाक न करेंगे।

आप कहियेगा कि महीधर का अर्थ कात्यायनसूत्र के अनुसार है। मैं पूछता हूं कि वेद पहले या कात्यायन का सूत्र पहले। मानना पड़ेगा कि सूत्र की सृष्टि वेद के बाद हुई। यह भी बहुत दिनों के बाद जब यज्ञ की परिपाटी प्रचलित हुई। कात्यायन ने उन्हीं मंत्रों का यज्ञ में विनियोग किया स्वामीजी ने यज्ञ से भिन्न आधि भौतिक अर्थ किया। फिर झगड़ा किस बात का।

इसी शंका समाधान के साथ साथ "उलूक पाल*" को

शंका का भी समाधान हो जाता है। क्योंकि श्लोक में उल्लू शब्द भी आया है। मिर्जापुर जिलाके सिंगारौली इलाके के जंगल में रहने वाले लोग उल्लू पालते हैं। वे उल्लू रात को चोरादिकों की सूचना दिया करते हैं जब कभी वहां पर कोई आदमी, वा जानवर 'रातको आ जाता है तो सबके सब बोलने लग जाते हैं जिससे वे लोग सावधान हो जाते हैं। विना किसी को वहां पर देखे, वे नहीं बोलते हैं।

(१३) यथे मां वाचं यजुर्वेद अ० २६ मंत्र २ के भाष्य में स्वामी जी लिखते हैं। हे मनुष्यों मैं ईश्वर जैसे (ब्रह्मराजन्याभ्यां) ब्राह्मण क्षत्रिय, (अर्थात्) वैश्य (शूद्राय) शूद्र (च) और (स्वाय) अपने स्त्री सेवकादि (अरणाय) और उत्तम प्राप्त हुये अन्त्यज के लिये (जनेभ्यः) इन उक्त मनुष्यों के लिये (इह) इस संसार में (इमां) इस प्रकट की हुई (कल्याणीं) सुख देने वाली (वाचम्) चारों वेद रूपी वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूं वैसे आपलोग भी उपदेश करें। यहां पर स्वामीजीने निराकार का विवाह कर दिया। जब उसे लुगाई है तो निराकार कैसे ? साकार हुआ (इसके आगे आपने अपने मनकी उधेड़ बुन की है उससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं)

समीक्षा—प्रथम तो स्वामी जी के संस्कृत भाष्य से हिन्दी का भाष्य भिन्न है ग़लती का हो जाना कोई बड़ी बात नहीं। महीधर भाष्य में सैकड़ों गलतियां छपी हैं। इसके दो दो

एडीशन हो गये, गलतियां चल ही आ रही है किसी का ध्यान ही उधर नहीं जाता। यथा—पद्मानां के स्थान में पद्मानां (१-३३) माता को स्थान में मता, सगर्भ्यो के स्थान में ग सर्भ्यो। इत्यादि संस्कृत भाष्य में स्वाय. को अरणाय का विशेषण रक्खा है। भाषा में गलत छप गया है। यदि कोई हठ करे कि नहीं संस्कृत के भाष्य का भी वही अभिप्राय है जो हिन्दी में है तो उसका भी उत्तर ले लो। आपने स्त्री का अर्थ पत्नी करके आक्षेप किया है। यहां पर स्त्री शब्द सामान्य स्त्री वाचक है जिससे सम्पूर्ण स्त्रियों का ग्रहण होता जिस प्रकार भगवान के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र अपने हैं वैसेही सम्पूर्ण स्त्री तथा भृत्यादि भी उसी के हैं जैसे पुरुष के लिये वेद वाणी का उपदेश, वैसे ही स्त्री मात्र के लिये वेद वाणी का उपदेश। इसमें कुतर्क की क्या अवश्यकता ?

वेदावताराध्यायकी मीमांसा

इस अध्याय में आपने वेद और उपनिषदों के मंत्र देकर वेद और उपनिषद से अवतार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अवतार क्या है इस विषय पर पूर्व में प्रकाश डाला गया है। आपने इस अध्याय के आरंभ में आर्यसमाजियों पर अपने दिल के फफोले फोड़े हैं। उससे हमारा कोई प्रयोजन

नहीं। तू तू मैं मैं करना पाण्डित्य नहीं, मूर्खता है । इस लिये तू तू मैं मैं में न पड़कर मैं आपके दिये हुये प्रमाणों पर ही विचार करूंगा क्योंकि ये प्रमाण ही उभय पक्ष के साधक व बाधक हैं।

आप ने लिखा हैः—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः॥

अथर्व० कां० १० अनु० ४ सूक्त ८ मन्त्र २७,
॥ श्वे० उपनिषद् ॥

आप ही स्त्री दुर्गा काली हो, आप ही रामकृष्णादि पुरुष हो, आपही कुमार सनकादिक हो, आपही कन्या रूपधारी हो, आप ही वृद्ध होकर दण्ड से वंचित करते हो, आप ही प्रकट होकर सर्वरूप हो। कहिये अब तो वेद में अवतार निकला?

आगे आपने प्रश्नोत्तर के रूप में यह लिखा है कि स्वामी तुलसीरामजी ने जो इस मन्त्रको जीवपरक लगाया है सो गलत है क्योंकि इसके आगे पीछे ईश्वर परक मन्त्र हैं।

समीक्षा—इस मन्त्र में परमात्मा की व्यापकता के सिवाय अवतार का नामोनिशान नहीं, परन्तु आप इस मंत्र के अर्थ को तोड़ मड़ोर कर जनता की आंख में धूल झोंक रहे हैं। इस लिये जनता के सामने आप के पाखण्ड का मूलोच्छेद करके सत्यका उद्घाटन करना लोकहित की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है।

(१) आप सनातन धर्मी हैं सनातन धर्म के किसी भी आचार्य ने इस मन्त्र को अवतार प्रतिपादक नहीं बतलाया अथवा लिखा है, किन्तु इससे परमात्मा की व्यापकता ही का प्रदर्शन किया है।

(२) आपका अर्थ स्वयं उसी श्वेताश्वतरोपनिषद् के विरुद्ध होने से अमान्य है।

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्॥

इस पर स्वामी शंकराचार्य्य का भाष्य तथा उसका अर्थ देना आवश्यक है यद्यपि जन्मनिरोधं शब्द यहां स्पष्ट पड़ा है तथापि उनका भाष्य देकर ही मैं अर्थ करना उचित समझता हूं। ताकि विरोधियों को चीं चपड़ करने का मौका न मिले

उक्त मर्थं द्रढयितुं मन्त्रदृगनुभवं दर्शयति। वेद जानेऽहमेतमजरं विपरिणामधर्मं वर्जितं पुराणं पुरातनं सर्वात्मानं सर्वेषा मात्मभूतं सर्वगतं विभुत्वादा काशवद्व्यापकत्वात्। यस्य च जन्मनिरोध मुत्पत्त्यभाव प्रवदन्ति ब्रह्मवादिनोहि नित्यम्

भावार्थ—परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म बड़े से भी बड़ा है इत्यादि बातों को दृढ़ करने के लिये आगे फिर मन्त्र द्रष्टा अपना अनुभव दिखलाता है। इस परमात्मा को मैं विपरिणाम धर्म रहित, पुरातन, सबका आत्मभूत, आकाशवद्व्यापक् होने से सर्वगत जानता हूं। ब्रह्मवादी लोग इस परमात्मा के जन्मका अभाव नित्य बतलाते हैं।

पाठको, उक्तमन्त्र आप की पुस्तक के सम्पूर्ण मन्त्रो के पाखण्ड पूर्ण अर्थों पर पानी फेर देता है। जब मन्त्र में स्पष्ट है कि उसका जन्म नहीं होता तब उसी के आगे उसी उपनिषद् में तीसरा मन्त्र उसका जन्म बतलाने लगे यह कैसी असंगत बात है। श्रुतियों में परस्पर विरोध नहीं हो सकता। तत्तु समन्वयात्॥ यह वेदान्त सूत्र परस्पर विरोध का खण्डन करता है। श्रुति एक स्थान पर जन्म बतलावे दूसरे स्थान पर जन्माभाव बतलावे, इसे कोई भी विद्वान नहीं मान सकता और न तो वेदान्त दर्शन इसका प्रतिपादन ही करता है तब आप कैसे कबड्डी मार रहे हैं और शब्दको खींचतान कर अवतार सिद्ध करने चले हैं जब कि उक्त श्रुति स्पष्टरूप से अवतार का निषेध करती है।

अब आपके अर्थ पर विचार करना चाहिये। तीन मंत्र साथ ही हैं तीनों को यहां पर देकर स्वामी शंकराचार्य का अर्थ देता हूं। ताकि उन्हें इधर उधर पाखण्डवशात् कबड्डी लगाने का अवकाश न मिले।

ये तीनो मन्त्र उक्त मन्त्र के आगे के हैं।

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति।
विचैति चान्ते विश्वमादौ सदेवः सनो बुद्ध्याशुभया संयुनक्तु॥१॥

तदेवाग्निस्तदादित्य स्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः॥
त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥३॥
नीलः पतंगो हरितो लोहिता क्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादि मत्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि
विश्वाः ॥ ४ ॥

शांकर भाष्यम्—य एकोऽद्वितीयः परमात्माऽवर्णः जात्यादि रहितो निर्विशेष इत्यर्थः। बहुधा नाना शक्ति योगाद् वर्णान् अनेकान् निहितार्थोऽग्रहीत प्रयोजनः स्वार्थनिरपेक्ष इत्यर्थः। दधाति विदधात्यादौ। विचैति व्येति चान्ते प्रलयकाले। च शब्दान्मध्येपि यस्मिन् विश्वं सदेवो द्योतनस्वभावो विज्ञानै करसः इत्यर्थः। स नोऽस्मान् शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु संयोजय तु ॥ १ ॥

यस्मात्स एव स्रष्टा तस्मिन्नेव लयस्त स्मात्स एव सर्वं न ततो विभक्तमस्ति इत्याह मन्त्रत्रयेण। तदेवेति ॥ तदेवात्मतत्वमग्निः। तदादित्यः एव शब्दः सर्वत्र संबध्यते तदेव शुक्रमिति दर्शनात्। शेष सृजु ॥ तदेव शुक्रं शुद्ध मन्यदपि दीप्तिमन्न क्षत्रादि तद्ब्रह्म हिरण्य गर्भात्मा तदापः स प्रजापतिर्विराडात्मा ॥ २ ॥ स्पष्टो मन्त्रार्थः ॥ ३ ॥

नील इति ॥ त्वमेवेति सर्वत्र संबध्यते। त्वमेव नीलः पतंगो भ्रमरः पतनाद्गच्छतीति पतंगः। हरितो लोहिताक्षः शुकादिनिकृष्टाः प्राणिप्राणिनस्त्वमेवेत्यर्थः। तडिद्गर्भो मेघ ऋतवः समुद्रा यस्मात्त्वमेव; सर्वस्यात्मभूतस्तस्मादनादिस्त्वमेव

त्वमेवाद्यन्त शून्यः। वि भुत्वेन व्यापकत्वेन यतो जातानि भुवनानि विश्वानि॥ ४॥

अर्थ—वह परमात्मा अद्वितीय और अवर्ण अर्थात् जात्यादि रहित निर्विशेष है। नाना शक्ति के योग से अनेक वर्णों को विना किसी स्वार्थके सृष्टि के आदि में बनाता है। उसके बनाने में उसका कोई निजी प्रयोजन नहीं है। प्रलय काल में सम्पूर्ण विश्व उसी में लीन होता है। ऐसा वह परमात्मा हमे शुभ बुद्धि से युक्त करे॥ १॥

क्योंकि वही परमात्मा सृष्टि को बनाने वाला है और उसी परमात्मा में सृष्टि का लय भी होता है इस लिये वही सब कुछ है उससे भिन्न कुछ नहीं है यही तीन मंत्रों में कहा गया है वही अग्नि है वही आदित्य है वही वायु है वही चन्द्रमा है। वही दीप्तिमान नक्षत्रादि है वही ब्रह्मा है वही जल है वही विराडात्मा प्रजापति है। तू ही स्त्री है तू ही पुरुष है तू ही कुमार है तू ही कुमारी है। तू ही वृद्ध होकर दण्ड से चलता है। तू ही प्रकट हो कर चारों ओर मुख वाला होता है वही नीलारग है वही भ्रमर है। वही हरितवर्णका रक्त नेत्र वाला शुकादि निकृष्ट प्राणी है वही मेघ है वही समुद्र है तू अनादि आदि और अन्त से रहित है तू ही व्यापक होकर सब में वर्तमान है इसी से सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है।

पाठक वृन्द, आप लोगों के सामने मैंने चारों मन्त्रों का

अर्थ स्वामी शंकराचार्य्य के भाष्य के अनुसार रख दिया। क्या इनमें अवतार का वर्णन है ?

इन मन्त्रों में स्पष्टतः उस परमात्मा की व्याप्ति का वर्णन है।

परमात्मा अग्नि वायु आदित्य चन्द्रमा नक्षत्र जल स्त्री पुरुष कुमार कुमारी वृद्ध युवा पशु पक्षी मेघ ऋतु समुद्र इत्यादि संसार की सम्पूर्ण सृष्टि में व्यापक है। उक्त पदार्थों अथवा यों कहिये कि सम्पूर्ण सृष्टि से अलग नहीं है इसी लिये उसे सब ही कुछ कहा गया है। परन्तु वास्तव में उनमें रहता हुआ भी उनसे भिन्न है।

दूसरे मंत्र में आधि दैविक वर्णन है तीसरे मंत्रमें आध्यात्मिक वर्णन हैं चौथे में आधि भौतिक वर्णन है। इनमें कहीं भी अवतार का गन्ध नहीं।

शब्द को तोड़ मड़ोर कर अपने पूर्वाचार्य्यों साथ ही श्रुति के विरुद्ध अर्थ करके ठगने के कारण ही मुझे इन पण्डितों को पाखण्डी और धूर्त कहना पड़ता है। बतलाइये इसमें कहां लिखा है कि परमात्मा अवतार लेता है।

अथर्व वेद काण्ड १० अनुवाक ४ सूक्त ७।८ दोनों ही परमात्मा के व्यापकत्व के वर्णन करने वाले हैं। प्रत्येक आदमी पढ़कर देख सकता है। अवतार का कहीं प्रसंग ही नहीं है।

आपने वंचसि का अर्थ "वंचित करते हो" ऐसा करते हैं यहभी आपके वैदिक मंत्रार्थके ज्ञानका एक अच्छा उदाहरण है।

रामकृष्ण सनकादि न मालूम ये कहां से पैदा कर लिये? आप क्या करें, आपने पूर्व के अवतार वादियों का अनुकरण किया है। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास पं० ज्वाला प्रसाद जी इनके नेता हैं। जैसा उन्होंने किया, वैसा इन्होंने किया। इसमें पं० कालूरामजी का क्या अपराध है?

॥ त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥ मंत्र के इस भाग पर थोड़ा सा विचार करना है क्योंकि जात शब्दको लेकर आप उन लोगों के सामने पाखण्ड खड़ा करेंगे जिनका स्वाध्याय कम है। आपने अर्थ किया है। तुम प्रकट होकर सर्वरूप हो। इसी जात शब्द का अर्थ स्वामी दयानन्द ने "एषोह देवः" इस मन्त्र में प्रकट होना किया है। वहां पर आपने उसे खण्डन करने के लिये जी तोड़ परिश्रम किया है परन्तु यहां पर आपने स्वयं जातः का अर्थ "प्रकटहो कर" ऐसा किया। अब आप को क्या कहा जाय। पाठक ही निर्णय करें। प्रकट होकर सर्व रूप हो" यह अवतार सिद्ध नहीं करता। कोई भी अवतार ऐसा न हुआ जो प्रकट हो कर सर्व रूप हुआ हो। सब एक देशी हो रहे हैं। अतः इन शब्दों में तो अवतार का गन्ध भी नहीं है।

जब पहले इसी उपनिषद की २२ वीं श्रुति में स्पष्ट वर्णन है कि परमात्म के जन्म का नित्य अभाव है (देखो पृ० १०८) तब जातः आदि पद से उत्पन्न होना अर्थ करना श्रुति के अर्थ का अनर्थ करना है। परमात्मा का जन्म कभी नहीं

होता। केवल यही एक श्रुति आपके सम्पूर्ण मन्त्रोंके अर्थों का उत्तर है, परन्तु उन श्रुतियों की भी संगति लगानी ही पड़ेगी क्योंकि उन्हीं को सामने रखकर मूर्खों को फंसाया जाता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् अ० ५ मंत्र २० में लिखा है।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।

यद्यच्छरीर मादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥२०॥

जीवात्मा न स्त्री है न पुरुष है और नपुंसक है। जैसे जैसे शरीर में जाता है उसी उसी शरीर से वह 'युक्त होता है। जब ऊपर की श्रुति में जीवात्मा ही स्त्री पुरुषवा नपुंसक नहीं है तब परमात्मा स्त्री पुरुष कैसे हो सकता है जो जन्म लेता ही नहीं जैसा कि ऊपर अ० ४ के २२ वीं श्रुति में दिखलाया गया है।

वही आदित्य है वही अग्नि है इसे देख कर लोग कहेंगे कि आदित्य ईश्वर है। अग्नि ईश्वर है। परन्तु यह भ्रम लोगों में इस लिये होता है कि वे स्वाध्याय नहीं करते। इसका तात्पर्य्य परमात्मा की व्याप्ति में है यदि ऐसा अर्थ होता तो अग्नि को उसका शिर चन्द्र सूर्य को उसका नेत्र दिशायें उसके कान वायुः उसके प्राण क्यों कहे जाते ?

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्व भूतांतरात्मा॥

यदि वही सूर्य चन्द्र होता तो-सूर्या चन्द्रमसौधाता यथा

पूर्वम कल्पयत्—परमात्मा ने सूर्य और चन्द्र को बनाया, ऐसा क्यों वेद कहता?

इससे हर एक जिज्ञांसु समझ सकता है कि उक्त तीनों श्रुतियों में ब्रह्म की व्यापकता का वर्णन है; न कि परमात्मा सुग्गा तोता मैना पशु पक्षी सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि है।

अब जातः पद का भाव क्या है यह समझमें आगया होगा जो लोग जातः का अर्थ पैदा हुआ, उत्पन्न हुआ, ऐसा लेते हैं वे भूल करते हैं या जान बूझ कर पाखण्ड करते हैं। क्योंकि जब उसका जन्म ही नहीं होता, जैसा ऊपर बतलाया गया है तब जातः का अर्थ जन्म लेना कभी नहीं हो सकता। नहीं तो श्रुतियों में परस्पर विरोध हो जायगा। पीछे पृ० ७८ में इस पर प्रकाश डाला गया है। वहीं देखिये।

(२) एषो ह देवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वो हजातः सउगर्भे अन्तः। स एव जातः स जनिष्य माणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठ-तिसर्वतो मुखः॥

यजु० अ० ३२ मंत्र ४

हे मनुष्यों, वह देव परमात्मा जो सब दिशा विदिशाओं में व्याप्त है। पूर्व समय में गर्भ के भीतर प्रकट हुआ जो कि सबको पैदा करने वाला था जो सब ओर मुखवाला होरहा है।

यह हुआ पं० कालूराम का एक अर्थ इसी अपनी पुस्तक के पृ० ३६ में आपने, उक्त मंत्रका अर्थ यों किया है—

यह जो पूर्वोक्त देव परमात्मा सब दिशा विदिशाओं में नाना रूपधारण करके ठहरा हुआ है। यही प्रथम सृष्टि के आरंभ में हिरण्य गर्भ रूपसे उत्पन्न हुआ। वही गर्भ के भीतर आया। वही उत्पन्न हुआ और वही आगेको उत्पन्न होगा। जो सबके भीतरअन्तः करणों में ठहरा हुआ है और जो नाना रूप धारण करके सब ओर मुख वाला हो रहा है।

आपने दो स्थानों में दो अर्थ किए। दोनों एक दूसरे के विरुद्ध। अस्तु, इस मंत्र की समालोचना पृ० ७७ में विस्तार पूर्वक कर दी गई है। पाठक वहीं देखलें। यहाँ पर आपने जो विशेष लिखा है उसका उत्तर दे दिया जाताहै।

आपने लिखा है कि गर्भे पद का अर्थ होता है पेट के भीतर। परन्तु स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है अन्तः करण के भीतर। ऐसा करने से उन्हें कोई नहीं रोक सकता यहाँ तो अन्तःकरण किया यदि चाहते तो इसका अर्थ भैंसकर देते। जैसे भैंस के अर्थ के कुछ प्रमाण नहीं वैसेही अन्तकरण में कुछ प्रमाण नहीं।

समीक्षा—यदि कालूरामजी स्वाध्याय शील होते और हृदय के अन्दर पाप न रखते तो इस प्रकारके, मूर्खता द्योतक आक्षेप न करते। दुःख है कि ऐसे लोग सनातन धर्मके दिग्गज पण्डित गिने जाते हैं जिन्हे गर्भ शब्द के अर्थ का भी ठीक ज्ञान नहीं है। अच्छा, यदि गर्भे का अर्थ पेटके भीतर ऐसा ही होता है तो निम्नलिखित मंत्र में इसका अर्थ क्या होगा।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।

क्या आचार्य ब्रह्मचारी को अपने पेटके भीतर रख लेताहै। कहिये इसका उत्तर क्या है? यहां पर स्वामीजी का अर्थ ठीक होगा या आपका? स्वामी जी के अर्थ में प्रमाण मिला या नहीं?

देवी रापः एषवो गर्भः यजु० ८—२६

कहिये क्या जल को भी पेट होता है?

इस तरह कई एक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसके देने का अभिप्राय यह है कि एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं।

कालूरामजी ने तो अवतार का मानो ठीका लिया है इसीलिये उचित अनुचित की विवेचना न करके मनमाना आक्षेप करते रहते हैं।

(३) "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश॥"

पं० कालूरामजी का अर्थ—इन्द्र परमेश्वर अपनी मैटर से अपनी सामर्थ्य से अनेक रूपवाला होता है। वह इस अपने रूप को भक्तों पर विख्यात करने के लिये जैसे रूपकी इच्छा करता है वैसा वैसा रूप धारण करता है। इस परमात्मा के सैकड़ों रूप हैं उनके दश मुख्य हैं कहिये अवतार है या कुछ सन्देह है।

पण्डित तुलसी रामने इसका अर्थ जीवात्मा परक लगाया है। इन्द्र का अर्थ जीवात्मा उतनाही असंभव है जितना धोबी का अर्थ ब्राह्मण करना। यदि कोई इन्द्र का अर्थ

जीवात्मा सिद्ध करदे, तो कम से कम हमतो अवतार पर बहस करना छोड़ दें। इसके आगे आपने ऐसे २ प्रमाण दिये हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि इन्द्र नाम परमात्मा का है।

समीक्षा—जो दूसरों पर आक्षेप करने में हातिम है, उसे इस प्रकार चलना चाहिये कि दूसरे उसपर आक्षेप न कर सकें। परन्तु आप में उस योग्यता की कमी है। कारण कि यहतो आपके दिमाग का मसाला ही नहीं है। यह सब तो पं० ज्वाला प्रसाद तथा अम्बिकादत्त व्यास का उच्छिष्ट है, जिसे खाकर आप उसी तरह उगल रहे हैं। इतना भी ध्यान न रखा कि जब इसकी पोल खुलेगी, तो लोग क्या कहेंगे। वेदान्त दर्शन के—न स्थानतोपि परस्योभयलिगं सर्वत्रहि—इस सूत्र से सिद्ध कर के पहले पृ० ४० में दिखलाया गया है कि वह निराकार ही है साकार नहीं है। रूप वाला नहीं है। फिर न मालूम वेदान्त दर्शन के विरुद्ध क्यों आप व्यर्थ का उछल कूद मचाते हैं।

आपने जो अर्थ किया है, वह तो आपके आचार्यों के बिल्कुल विरुद्ध है। आपके आचार्यों ने जो इसका अर्थ किया है, आज नहीं हजारहों वर्ष पूर्व वही सनातन धर्मका अर्थ कहा जा सकता है। आप लोग तो पाखण्ड करके सनातन धर्मका नाश कर रहे हैं। आप सरीखे अललटप्पू अर्थ न तो सायण ने किया है और न स्वामी शंकराचार्य ने। दशमुख हैं यह कहां से ले आये?

इन्द्र परमात्मा का नाम भी है और जीवात्मा का भी। जैसे आत्मा शब्द दोनों के लिये व्यवहृत होता है, परन्तु प्रकरण वशात् उसीसे एक स्थान पर परमात्मा और दूसरे स्थान पर जीवात्मा ग्रहण किया जाता है। इसीप्रकार इन्द्र आदि शब्दों का है। वेदान्तदर्शन तीसरा अध्याय द्वितीय पाद में सूत्र २१ के भाष्यमें इसी उक्त मंत्र का उल्लेख है। इसपर नीचे यह नोट दिया हुआ है अस्य जीवभावं प्राप्तस्य ईश्वरस्य दश हरयो विषया इन्द्रियाणिवा। जीवत्वको प्राप्त ईश्वर को दश इन्द्रियाँ हैं। यहां पर श्रीस्वामी शंकराचार्य जी भी यह वर्णन जीवका ही मानते हैं। यद्यपि उनके पक्ष में परमार्थ में ईश्वर और जीव दोनों एकही हैं, परन्तु व्यवहार में तो भिन्न भिन्न ही हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यहां इन्द्र से जीव का ग्रहण है। फिर आप पं० तुलसी रामको क्यों कोसते हैं। स्वामी तुलसीराम ने उक्त मंत्रका अर्थ जीवपरक किया है और स्वामी शंकराचार्य भी जीवपरक ही अर्थ मानते हैं, सिर्फ इतना और कहते हैं कि वह जीव ईश्वर ही है। फिर अब इन्द्र शब्द के अर्थ में आपको क्या शंका रही? और भी प्रमाण लें।

यजुर्वेद अध्याय ६ कण्डिका २० में महीधर ने इन्द्र का अर्थ आत्मा किया है। यथा इन्द्र आत्मा तत्सम्बन्धी प्राण वायु रस्य पशोरंगे अंगे सर्वेषु अंगेषु निदीध्यत निहितः॥ ऐसेही अध्याय ६ मंत्र ४० का महीधर भाष्य देखिये जहांपर इन्द्र का

अर्थ आत्माही किया गया है । कहिये अब तो इन्द्र का अर्थ जीवात्मा भी सिद्ध हुआ ? कहिये अब तो अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अवतार वाद पर शास्त्रार्थ नहीं करियेगा न ? आपकी यह प्रतिज्ञा भी देखना है ।

इस मंत्रसे चाहे परमात्मा परक अर्थ करो, चाहे जीवात्मा परक अर्थ करो, अवतार सिद्धी तो कालत्रय में भी नहीं हो सकती । अब अर्थ सुनिये वह परमात्मा (रूपं रूपं) प्रत्येक रूपवान पदार्थों में (प्रतिरूप) तुल्यरूप वाला अर्थात् तदाकार हो रहा है । (तद् रूपं) ये जो रूपवान पदार्थ हैं, वे (अस्य प्रतिचक्षणाय) इस परमात्मा को प्रकाशित (प्रकट) करने के लिये हैं । इन्हीं रूपवान कार्य्य जगत के द्वाराही उसका ज्ञान होता है । प्रत्येक वस्तु की बनावट व कारीगरी देखकर ही यह अनु- मान होता है कि इसका बनानेवाला बड़ाही चतुर है । इसलिये मंत्र में कहा गया कि ये सब रूप उसकी महिमा को प्रकट करने के लिये हैं । (इन्द्र) परमात्मा (मायाभिः) प्रकृति के साथ में (पुरु रूपं ईयते बहुरूपो भाति–आनन्द गिरिः) अनेक रूपवाला प्रतीत होता है, वास्तव में वह रूप रहित है । क्यों बहुरूप वाला प्रतीत होरहा है, इसका उत्तर आगे बतलाते हैं । युक्ता रथ इव वाजिनः स्वविषयप्रकाशनाय हि यस्मात् अस्य हरय हरणादिन्द्रियाणि शता शतानि दशच प्राणिभेदबाहुल्यात् शता शतानिदश च भवन्ति (शंकराचार्यः) रथ में

जुते हुये घोड़े,के,समान उसे सैकड़ों दश इन्द्रियाँ हैं । ऐसा क्यों कहाकि उसके सैकड़ों हजारहों दश इन्द्रियां हैं। इस लिये कहा कि वहकरोड़ों के अन्दर विद्यमान है इसलिये प्राणि· भेद की बाहुल्यता से सैकड़ों हजारहों या दश इन्द्रियाँ कही गई हैं ।

कहिये अवतार कहां गया ? सिवाय परमात्मा की व्यापकता के इसमें और क्या है?? स्वामी शंकराचार्य का अर्थही आपके पाखण्ड को चकनाचूर कर देता है। "ईयते"का अर्थ धारणकरना किस कोष व्याकरण तथा आर्ष प्रमाणसे है ? इस परमात्मा के सैकड़ों रूप है उनमें दश मुख्य हैं यहअर्थ कैसे होगा ? किस आचार्य ने ऐसा किया ? सायण ने या शंकर ने ? यह अर्थ तो कालत्रय में भी नहीं हो सकता। कौनसा ऐसा अवतार हुआ जिसको सैकड़ों इन्द्रियां थीं ? शायद यह अवतार आपके अमरोधा में उत्पन्न हुआ हो, तो कोई आश्चर्य नहीं ऐसा अवतार तो किसीने न देखाकि जिसके सैकड़ों इन्द्रियां हों। ईश्वर की बहुरूपता उसके व्यापक होने के कारण उसमें अध्यारोपित है। वास्तव में वह निर्विशेष निराकार है। इसका निर्णय वेदान्त दर्शन अध्याय १ पाठ २ सूत्र ११ से २१ तक में किया गया है।

(४) "अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव । एक स्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपं बहिश्च ॥

कठोपनिषद् पांचवीं वल्ली

पं० कालूराम की धृष्टता देखिये। 'आपने इस मंत्रपर से भी अवतार सिद्ध करने के लिये मनमाना' अर्थ किया है। आपका अर्थ यह है—जैसे एकही अग्निभुवन में प्रविष्ट होकर जैसी लकड़ी पाता वैसाही आकर धारण करता है, वैसेही समस्त भूतों का आत्मा ईश्वर रूप के अनुकूल शरीर धारण करता है। बाहर भी रहता है।

समीक्षा—इनसे पूछना चाहिये कि शरीर धारण करता है या जन्म लेता है यह अर्थ कहां से लाये ? अथवा यही बता दो कि किन किन आचार्यों ने आप सरीखे अर्थ किया है ? भाई साहब, इस खींचतान से अवतार सिद्धि तो कालत्रय में भी नहीं हो सकती। इस मन्त्र का अर्थ तो साफ है—

जैसे एकही अग्नि भुवन में प्रविष्ट होकर तदाकार होरही है उसी प्रकार एकही परमात्मा प्रत्येक रूपवान .पदार्थों में तदाकार हो रहा है। इसमें जन्म का पचड़ा आपने कहां से लगाया। संस्कृत जाननेवाले आपके चेले आपकी चालाकी को तो पहले से ही समझते रहे होंगे पर अबतो आपकी धूर्तता सबपर प्रकट हो जायगी।

तदाकार का उदाहरण पाठकों को बतला देना आवश्यक है जैसे किसी गोललोहपिण्डको अग्नि में डाल दिया जाय तो उस गोल लोहपिण्ड में सर्वत्र बाहर भीतर अग्नि ही नजर आवेगी यह भी मालूम होगा कि अग्नि गोली है। अर्थात्

लोहेका जैसा आकार होता है उसी प्रकार सम्पूर्ण पदार्थों में परमात्मा लोह में अग्नि के समान तदाकार होरहा है । जिस प्रकार उस लोह पिण्ड को अग्नि का निजी शरीर नहीं कह सकते यद्यपि उसके अणु अणुमें ओतप्रोत है, उसी प्रकार प्रत्येक रूपवान पदार्थ परमात्मा के रूप नहीं हो सकते। प्रत्येकपदार्थों में वर्तमान रहने के कारण केवल रूपका अध्यारोप उसी प्रकार होता है जिस प्रकार लोह पिण्ड में अग्निको गोलाई का अध्यारोप होता है।

इससे मालूम हुआ कि दयानन्द का मत कपोल कल्पित नहीं, किन्तु उनके मत की नीव वेद और उपनिषद है।जिसे पूर्व के विद्वान् मानते आये हैं।

(५) प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरो गिरिष्ठः। येस्योरुषु त्रिषु विक्रमणे ष्वधि क्षियन्ति भुवनानिविश्वा ॥

यजु० ५। २०

इस मंत्र में आपका वक्तव्य यह है

(१) पण्डित तुलसीराम के अर्थ से स्वामी के अर्थ में अन्तर है स्वामीजी कुछ अर्थ करते हैं पण्डित तुलसीराम कुछ अर्थ करते हैं पं०शिव शंकर ने इस मन्त्रके अर्थमें विष्णु का अर्थ सूर्य किया है। किसको ठीक माना जाय।

२—विउपसर्ग पूर्वक क्रमधातु का अर्थ पैर से नापना होता है पं० तुलसीरामने इसके विरुद्ध किया।

३—सायण ने इस मन्त्रके भाष्य में ईश्वर का शरीर धा-

रण करना माना है। हमने माना कि इस मंत्रमें उन्होंने नृसिं-
वतार नहीं माना है।

५—स्वामी तुलसी रामने 'यस्य' का अर्थ " जिनव्यापक
विष्णुके रचे " ऐसा किया है जो सर्वथा अक्षरार्थ के विरुद्ध
कपोलकल्पित है।

६—सब भाष्यकारों ने कुचर आदि विशेषण विष्णु के
लगाये हैं परन्तु तुलसी रामजी ने इसके विरुद्ध किया है।
कुचर पद का अर्थ कुछभी न करना आपका भूल है।

समालोचना-पं० तुलसीराम स्वामी दयानन्द तथा पं०
शिवशंकर जी के भाष्यों में यदि अन्तर है, तो इससे क्या
हुआ! आप को उन भाष्यों पर दोष देकर अपने पक्ष का
प्रतिपादन करना चाहिये। भाष्य में परस्पर विरोध रहने से
किसी को आप गलत नहीं कह सकते क्योंकि एक मन्त्र के कई
अर्थ यदि युक्ति संगत हों तो सब ही मान्य होता है। स्वयं
महीधर ने एक मन्त्र के दो दो तीन तीन अर्थ किये हैं ※
तो क्या कोई कह सकता है उनमें से एक सत्य तथा दूसरा
या तीसरा असत्य है ※

प्रथम तो महीधर तथा उव्वट ने इसी मंत्र के दो अर्थ
किये हैं, क्या उनमें से एक सत्य और दूसरे को असत्य मानते

※ देखो, यजुर्वेद अ० ५।२०, ४-।२५,५- १४,-१५,७-१२, १०-
११,१०-२४ इत्यादि।

हैं? पण्डित शिवशंकर जी की लिखी पुस्तक पर तो आज तक किसी सनातनी ने कलम भी न उठाई । और न कोई उनपर कलम उठाही ही सकता है। हिम्मत है तो उनकी किसी भी पुस्तक का खण्डन तो करो, तब पण्डिताई का पता मालूम पड़ेगा।

दुसरों के लेखपर विना किसी दलील के आक्षेप करना तो आपको बहुत आता है, परन्तु अपने घर की बात नहीं देखते। पण्डित ज्वाला प्रसाद ने व्याख्यान रत्न माला नामक पुस्तक में मन्त्र का कैसा अनर्थ किया है। क्या आपने उसे नहीं देखा है। अच्छा देखिये।

अर्थ–मृगवत नरसिंह रूप धारी परमेश्वर पराक्रम से स्तुति को प्राप्त होता है। पृथिवी में विचरता है। नृसिंह आदि रूपसे,कैलाश में शिवरूप से निवास करता हुआ त्रिविक्रम अवतार में तीन पद न्यास से चतुर्दश भुवनों को कम्पायमान करता है।

क्या यह अर्थ आपके प्राचीन किसी भी भाष्य के अनुकूल है? न तो महीधरने ऐसा अर्थ किया, न उव्वट ने न सायण ने फिर यह पाखण्ड सनातन धर्म के नाम से क्यों रचा गया?

आज उन्हीं का अनुकरण आप कर रहे हैं। पर मेरे सामने आपका पाखण्ड नहीं चल सकता। आप ही बतलाइये पं॰ज्वाला प्रसाद का भाष्य ठीक मानें ,या उव्वट महीधर या सायण का? इसलिये मित्रवर, आक्षेप करना अभी सीखिये। इस

प्रकार व्यर्थ के आक्षेप से अपने सिर पर वैसा आक्षेप न लादने दीजिये जिसका उत्तर आप दे ही नहीं सकते।

(२) वि उपसर्ग पूर्वक क्रम धातु का अर्थ पैर से नापना होता है, इसलिये पं० तुलसी राम का अर्थ ठीक नहीं—

समीक्षा—वैदिक और लौकिक भाषा के शब्दों तथा उनके अर्थों में बड़ा अन्तर है। फिर धातु के अनेक अर्थ होते हैं। वेद में सर्वत्र धातुज ही अर्थ नहीं लिये जाते। वैदिक शब्दों के उचित अर्थ को अनुचित सिद्ध करने के लिये भाषा में प्रतिपादित धातु के अर्थ पर जोर लगाना संसार की आंख में धूल झोंकना है। अच्छा मैं आपसे पूछता हूं कृपया बतलाइयेः शप् धातु का अर्थ शापदेना है, शप्का अर्थ यजु ६—२२ में महीधर ने हिंसार्थ में क्यों किया। षज् सेवायां इस धातुका अर्थ यजु ४·२८ में स्थापन करना क्यों किया? निःसृजामि का अर्थ यजु ५।११ में निः क्षिपामि क्यों किया? "भूष अलंकारे" इस धातुका अर्थ आगच्छ (यजु-७-७) क्यों किया? मिमिक्षताम् का अर्थ सम्पादयतम् (७-११) क्यों किया? अय गतौ धातु का अर्थ (७—६) समर्पयामि क्यों किया?

इस प्रकार एक नहीं दो नहीं, सैकड़ों उद्धरण सायण महीधर के भाष्यों पर से दे सकता हूं जिसमें भाषा में प्रयुक्त धात्वर्थ भिन्न अर्थ वेद के अर्थ में किया गया है। इस लिये शास्त्री जी थोड़ा स्वाध्याय कीजिये व्यर्थ गाल बजाने

से अब आपकी धाक न जमेगी। बड़ी विकट खोपड़ा से काम पड़ा है!

अच्छा अब आपके अर्थ पर भी विचार कर लिया जाय। आप जोर देकर कहते हैं कि विक्रम का अर्थ पैर से नापना ही है

दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त यजु० २—२५। महीधर भाष्य या उव्वट भाष्य खोलकर पढ़िये, हां मैं भूल गया, आप तो पढ़ न सकेंगे किसी दूसरेसे पढ़वाकर सुन लीजिये। यहां पर विष्णु का अर्थ यज्ञ किया गया है। यज्ञ लोक में जगती छन्द के द्वारा गया। अब आप बतलाइये यज्ञ के कितने पैर हैं। गोरे या काले? कितने लम्बे? इसीसे विक्रम् शब्द बनता है जिसका अर्थ बहादुरी है। अब यदि कोई किसी से कहे कि आपने बड़ा विक्रम किया तब आप इसका क्या अर्थ कीजियेगा! क्या यह अर्थ कीजियेगा कि आपने पैर से बड़ा नापना किया! ऐसे ही पराक्रम आदि शब्दों पर विचार कर लीजिये। इस लिये पं० तुलसीराम का अर्थ ठीक है।

इसी मन्त्र में विक्रमण का अर्थ उव्वट ने लोक किया है। शायद इसे आपने न देखा हो? क्यों साहब, इन्होंने तो आपका समर्थन नहीं किया। आपने एक बड़ी चालाकी खेली है। आपने मंत्र का उव्वट भाष्य तो दिया है, परन्तु विक्रमण का अर्थ छोड़ दिया है। पण्डित तुलसीराम पर तो यह आक्षेप कि आपने कुचर का अर्थ दोनों ओर नहीं लगाया, पर आप यह लिख करके भी कि हम उव्वट का भाष्य देते हैं-उव्वट

का पूरा भाष्य नहीं दिया। क्या यह कम धोखे बाजी है? जिस शब्द से आपका लेख ही बिगड़ता था, उसे आपने एक दम उड़ा ही दिया। शाबास,

और प्रमाण लीजिये। यजुर्वेद (५-१८) में त्रेधा विचक्रमाणः पद आया है। महीधर ने इसका अर्थ किया है—त्रिषु लोकेषु अग्निवायु सूर्य रूपेण पदं निदधानः। तीनों लोकों में अग्नि वायु और सूर्य रूप से पद को रखते हुए। ऐसा ही अर्थ यजु० ५-१५ में भी किया है।

क्या मैं पूछ सकता हूँ कि वामन अवतार के पैर क्या अग्नि वायु सूर्य थे? क्या वामन के ये तीन पैर थे? यदि नहीं तो वामन अवतार की सिद्धि में इतनी खींच तान क्यों?

इन सब प्रमाणों से पं० कालूराम का वामन अवतार ऐसे भागा जैसे चूहा बिल्ली को देखकर भागता है।

पुनश्च यजु० अ० १७ मन्त्र ६० में विचक्रमे यह पद आया है और सूर्य के लिये प्रयुक्त हुआ है (देखो महीधर भाष्य)। क्या सूर्य को पैर है?

और देखिये निरुक्त दैवतकाण्ड अ० १२ खं० १९ जहाँ पर "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इस मंत्र के अर्थ में दुर्गाचार्य ने विचक्रमे का का अर्थ अधितिष्ठति किया है। कहिये यह भी अशुद्ध है? भाई, चालाकी तो ऐसी करनी चाहती थी, जो किसी तरह हज़म होजाती, पर आपने धोखा खाया। इसलिये पण्डित तुलसीराम का अर्थ ठीक है, ग़लत नहीं है।

(३) सायण और महीधर के अर्थ की समालोचना मैं आगे "इदं विष्णुर्विचक्रमे" इस मंत्र पर करूंगा। दोनों ने निरुक्त के विरुद्ध अर्थ किया है।

(४) स्वामी तुलसीराम ने "यस्य" का अर्थ "जिन व्यापक विष्णु के रचे" ऐसा किया है जो अक्षरार्थ के विरुद्ध मन गढ़न्त है। समीक्षा-पण्डित तुलसीराम ने "यस्य" इस पद का अर्थ "जिन व्यापक विष्णु के रचे" ऐसा नहीं किया है किन्तु यह सब अध्याहार है जो अर्थ करने में बराबर किया जाता है। पं० तुलसीराम ने ही नहीं किया, किन्तु ऐसा सभी आचार्य्य करते चले आये हैं। पर आपको क्या, आपको तो लोगों की आँख में धूल झोंक कर अपने पाखण्ड के बल पर अवतार सिद्ध करना है, फिर आपको सत्य से क्या काम? जैसे काम बने वैसे कर डालो। मैं अनेक ऐसे उदाहरण आपके सामने रखता हूं बतलाइये भाष्य कारों ने ऐसा क्यों किया?

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वान् (यजु० ७-१५) इस मन्त्र के भाष्य में [यस्य इन्द्रस्य प्रथमः मुख्यः मन्त्री इतिशेषः] कोष्ठगत इतना अध्याहार कहाँ से आया?

भरमाणा वहमाना हवींषि-यजु० ८-१८ इसके अर्थ में अध्याहार देखिये—ये रथिनः तेतुरथेषु विभ्रतः रथ हीना। वहमाना स्कन्धेषु हवींषि वहन्तः॥ कहिये यह कहाँ से कूद पड़ा? क्या यह सब अध्याहार अक्षरार्थ के अनुकूल है?

आप यही न बतलाइये कि कुचर के अर्थ में "मत्स्यादि रूपेण" यह किस अक्षर का अर्थ है? क्या इस पर दृष्टि न गई? इसी मन्त्र के अर्थ में अक्षरार्थ विरुद्ध मनमाना अर्थ महीधर करें वह तो आपको मान्य, पर उचित अध्याहार पं० तुलसीराम करें तो आप को अमान्य यह क्यों? इसका जवाब आपके पास क्या है?

आप एक बार तो लिखते हैं कि पं०तुलसीराम ने कुचर का विरुद्ध अर्थ किया है दूसरी जगह लिखते हैं कि कुचरका अर्थ छोड़ दिया है। यह परस्पर विरोधी बात कैसे, समझ में नहीं आती कि आपने ऐसा क्यों लिखा? किसी शब्द का अर्थ छूट जाना यह कोई दोष नहीं है। इससे किसी पर उसकी नीयत पर आक्षेप करना स्वयं अपना छोटापन प्रकट करना है।

पण्डित कालूराम जी की विशाल बुद्धि का एक नमूना लीजिये। आप लिखते हैं कि भीम शब्द के अर्थ पर से हमारी ही पुष्टि होगी क्योंकि नृसिंह भगवान का स्वरूप अति भयङ्कर है अतएव उनसे सब डरते हैं।

अन्धे को बड़ी दूर की सूझी। भीम शब्द में से नृसिंह अवतार निकल आया। यही तो पं० कालूराम के धर्मिष्ठ होने का पक्का प्रमाण है। बिभेत्यस्मा दसौ भीमः। जिससे लोग डरें वह भीम। शब्द का यही अर्थ महीधर उव्वट ने भी किया है। आफिसरों से सब ही नाहक डरते हैं इसलिये

वे सब नरसिंह अवतार ही हुये । हेडमास्टर कलेक्टर कमिश्नर लाट बादशाह सब ही नरसिंह के अवतार हुए। पुलिस से लोग सब से अधिक डरते हैं, क्या वे सब आपके नरसिंह भगवान हैं? क्या खूब खींच तान करने चले। पण्डित जी महाराज, अपने दिमाग की दवा करा डालिये, और यदि दिमाग ठीक हो, तो इस बुढ़ौती में पाखण्ड त्याग दीजिये। परमात्मा से सारी दुनियां भय खाती है। भया-दस्याग्नि स्तपति भया त्तपति सूर्यः। उसीके डरसे अग्नि जलती है वायु चलता है, सूर्य तपता है। क्या आप ईश्वर से नहीं डरते? यदि डरते हैं तो इतनी खींचतान करने की आवश्यकता? क्या इससे अवतार सिद्धि होगी? क्या किसी कोष में भीम का अर्थ नरसिंह लिखा है? आपके किसी आचार्य्य ने अथवा पूर्व कालीन किसी भाष्यकार ने भीम का अर्थ नरसिंह-अवतार किया है! आप दिखला दें, मैं मान लूँगा। आप लिखते हैं कि उनसे सब डरते हैं, पर यह बात पुराण से गलत सिद्ध होती है।

आपके पुराणों में अवतार वाद है। नरसिंह के अवतार का उन्हीं में वर्णन है। उसे देखने से पता चलता है कि नरसिंह को शिव ने मार डाला है। पाठकों के मनोरंजनार्थ कथा मैं यहां पर देता हूँ—

हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर भी संसार में शान्ति न हुई। नरसिंह की ज्वाला निवृत्त न हुई। तब देवोंने प्रह्लाद

को उसकी शान्ति के लिये नरसिंहके पास भेजा। प्रह्लाद को देखकर वे प्रसन्न हुये और गले लगाया तो भी ज्वाला शान्त न हुई। तब ब्रह्मादिदेव ने महादेव जी से प्रार्थना की। महादेवजी ने कहा कि आप लोग अपने स्थान को जाइये मैं ज्वालाको शांत करूंगा। इस प्रकार देवोंसे प्रार्थना किये जाने पर शिवने नरसिंह को वध करने का विचार किया।

एवं ह्यभ्यर्थितः देवैर्मतिं चक्रे कृपालयः।
महातेजो नृसिंहाख्यं संहर्तुं परमेश्वरः॥

और वीरभद्र को बुलाकर कहाः—

अकाले भयमुत्पन्नं देवानामपि भैरवम्।
ज्वलितः सनृसिंहाग्निः शमयैनं दुरासदम्
सान्त्वयन्बोधयादौतंतेन किन्नोपशाम्यति
ततोमत्परमं भावं भैरवं संप्रदर्शय।
सूक्ष्मं संहृत्य सूक्ष्मेण स्थूलं स्थूलेन तेजसा
वक्त्रमानय कृत्तिंच वीरभद्र ममाज्ञया॥

अकालमें देवताओं को भय उत्पन्न हुआ है। नरसिंहाग्नि जल उठी है उसे शान्त करो। पहले उसे समझाओ बुझाओ यदि वह उससे शान्त न हो, तो मेरा भैरव रूप दिखलाओ और सूक्ष्मतेज को सूक्ष्मतेज से और स्थूलतेज को स्थूलतेज से नाश करके उसका मुण्ड और चमड़ा मेरे पास ले आओ वीरभद्रने वहां जाकर नरसिंह को बहुत समझाया। वे बोलेः—

जगत्सुखाय भगवान् अवतीर्णोसि माधव।
स्थित्यर्थं त्वं प्रयुक्तोसि परेशः परमेष्ठिना॥
यदा यदा हि लोकस्य दुःखं किंचित्प्रजायते।
तदा तदावतीर्णस्त्वं करिष्यसि निरामयम्॥
यदर्थमवतारोय निहतः स हि दानव।
हिरण्यकशिपुश्चैव प्रह्लादोपि सुरक्षितः॥
अतीवघोर भगवान् नरसिंहवपुस्तव।
उपसंहर विश्वात्मन् त्वमेव मम सन्निधौ॥

हे भगवन् आप जगत् के सुख के लिये उत्पन्न हुये हो। जब जब किसी को दुःख होता है तब तब आप अवतार लेकर उसके दुःख को दूर करते हो। जिसके लिये आपने जन्म लिया था वह दानव मारा गया और प्रह्लाद की रक्षा भी हुई। हे भगवान आपका यह नरसिंह रूप बड़ा भयानक है, मेरे सामने ही इसका संहार करो।

वीरभद्र की बात सुनकर नरसिंह को और क्रोध चढ़ आया और डींग मारने लगे और वीरभद्रको पकड़ने के लिये दौड़े। वीरभद्रने भैरव रूप धारण किया जिसे देखकर नरसिंह के होशो हवास उड़ गये। वीरभद्र शरभ पक्षी का रूप धरकर उन्हें पकड़ कर आकाश में उड़ गये और उन्हें पटक २ कर मार डाला—

अथ विभ्रम्यपक्षाभ्यां नाभिपादान् विदारयन्
पादान् बबन्ध पुच्छेन बाहुभ्यां बाहुमण्डलम्

उन्हें घुमा घुमाकर और पंखो से नाभि और पैर को फाड़ते हुये पूंछसे पैरोंको बांध लिया और बाहु से बाहु को बांध लिया।

> भिन्दन्नुरसि बाहुभ्यां निजग्राह हरो हरिम्।
> उत्क्षिप्योत्क्षिप्यसंगृह्य निपात्यच निपात्यच॥
> उड्डीयोड्डीय भगवान् पक्षघातविमोहितम्।
> हरिं हरस्तं वृषभं विवेशानन्त ईश्वरः॥

दोनों भुजाओं से छातीको भेदन कर हर ने विष्णुको पकड़ लिया कभी ऊपर उछाल कर भूमि पर पटक देते थे कभी पकड़कर आकाश में उड़ जाते थे इस प्रकार भगवान् शिव पंख के मार से वेहोश नरसिंहमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार परवश हो जानेपर उन्हों ने शिव की स्तुति की परन्तु तिसपर भी शिव ने उन्हें न छोड़ा और उन्हें मार ही डाला।

> वीरभद्रोपि भगवान् गणाध्यक्षो महाबलः
> नृसिंहकृत्ति निष्कृत्य समादाय ययौगिरिम्॥
> सिंहकृत्तिवसनः तदाप्रभृति शङ्करः।
> तद्वक्त्रं मुण्डमालायां नायकत्वेन कल्पितम्॥

भगवान वीरभद्र भी नरसिंहकी खाल खींचकर पर्वत (हिमालय) पर चले गये। तभी से शिव जी नरसिंह की खाल ओढ़ने लगे और उनके मुखको मुण्डमाला का मध्य मणि बनाया।

पाठको! देखी आपने पौराणिकों की लीला! वीरभद्र भी

शिव के अवतार ही थे। नरसिंह विष्णुके अवतार थे। दोनों अवतारों में कैसी मुठ भेड़ हुई! अन्तमें वेचारे नरसिंह जान से मारे गये।

एक ईश्वर दूसरे को पटक पटक मार डाले। यह क्या बला है? जो नरसिंह स्वयं मारा गया, वह ईश्वर का अवतार कैसे हुआ, इसे अवतारवादी बतलावें। पण्डित कालूराम लिखते हैं कि नरसिंहसे सबही डरते हैं, किन्तु वीरभद्र ने उसे मार ही डाला। अस्तु,

आगे आपने उक्त मंत्र का अर्थ उव्वट के अनुसार दिया है जिसमें कहीं भी अवतार की गन्ध नहीं है। केवल कुचर शब्द का अर्थ उन्होंने "कौ पृथिव्यां मत्स्य कूर्मादि रूपेण चरतीति कुचरः" यह किया है कि जो पृथिवी पर मत्स्य कूर्मादि रूप से चलता है उसका नाम कुचर है। मैं पूछता हूं कि वेद मन्त्र में मत्स्यकूर्म आदि शब्द कहां हैं? ये शब्द तो उव्वट के हैं, वेद के नहीं। फिर इस मन्त्र से अवतार सिद्धि कैसे होगी?

इस लिये पं० कालूराम जी का सारा पक्ष दूषित होने से सर्वथा अमान्य है। अब इस मन्त्र का अर्थ सुनिये। मैं चैलेञ्ज देता हूं कि निम्न लिखित अर्थ पर दूषण देकर अर्थ को कोई भी अवतार वादी खण्डन करे। (तद् विष्णु) वह विष्णु (वीर्येण प्रस्तवते) अपने वीर्य के कारण लोगों से स्तुति किया जाता है जो (गिरिष्ठाः कुचरः मृगोन भीमः) पहाड़

पर रहने वाले, प्राणियों के वध से जीवन बिताने वाले सिंह के समान भय प्रद है। (यस्य) जिसके (उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) विस्तीर्ण तीन लोकों में (विश्वा भुवनानि) सम्पूर्ण भुवन (अधिक्षियन्ति) वास करते हैं। इसमें के प्रत्येक शब्द का अर्थ उव्वट के अनुसार है।

"मृगोन भीमः कुचरः गिरिष्ठाः" इतने पदों को विष्णु का विशेषण भी उव्वट और महीधर ने माना है। परन्तु अर्थ ग़लत है।

· क्योंकि 'न' पद को निरर्थक मानकर सब ही पदों को विष्णु का विशेषण मान लिया है जो निरुक्त के विरुद्ध है।

नेति प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्। उभय मन्वाध्यायम्। नेन्द्रं देवममसत इति प्रति षेधार्थीयः। पुरस्तादु पचारस्तस्य यत्प्रतिषेधति। दुर्मदासो न सुरायाम् इति उपमार्थीयः। उपरिष्टा दुपचारस्तस्य येनोपमीयते।

: अर्थ-यह निपात भाषा में निषेधार्थक, और वेद में निषेधार्थक और उपमा दोनों में आता है। जब प्रतिषेध के अर्थ में आता है तब प्रतिषिद्ध पूर्व रहता है। जब उपमार्थीय होता है, तो जिससे उपमा दी जाती है उसके आगे रहता है। अस्तु,

यद्यपि निरुक्त के विरुद्ध अर्थ किया है तथापि मंत्र के शब्दों पर से किसी स्थानपर किसी भी अवतार का ज़िक्र नहीं, कुचरः के अर्थ करने में जो मत्स्य कूर्मादि शब्द की योजना

की गई है, वह उव्वट और महीधर की है, वेद मंत्र की नहीं। अतः वेद मन्त्र से किसी भी प्रकार अवतार सिद्ध नहीं हो सकता। इस मन्त्र का अर्थ सूर्य्य परक भी होता है जैसा कि पण्डित शिव शङ्कर जी ने किया है। चूंकि उसपर कोई आक्षेप नहीं अतः उसको यहां पर देनेकी आवश्यकता नहीं।

प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् हतस्थुर्भुवनानि विश्वाः।

पं० कालूराम जी का अर्थ—जो कभी पैदा न हुआ ऐसा ईश्वर गर्भ के भीतर अनेक प्रकार से प्रकट होता है अर्थात् शरीर धारण करता है, उस ईश्वर के स्वरूप को धीर पुरुष सब ओर से देखते हैं उस ईश्वर में प्रसिद्ध विश्व के भुवन स्थित हैं।

इस मन्त्र से अवतार सिद्ध है। स्वामी दयानन्द का अर्थ यह है:—

हे मनुष्यो जो (अजायमानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न न होने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक जगदीश्वर (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा और (अन्तः) सबके हृदय में (चरति) विचरता है। और (बहुधा) बहुत प्रकार से (विजायते) विशेषकर प्रकट होता (तस्ययोनि) उस प्रजाऽपतिके योनि को (धीराः) ध्यान शील विद्वज्जन (पश्यन्ति) देखते है।

(तस्मिन्) उसमें (ह) प्रसिद्ध (विश्वा भुवनानि) सबलोक लोकान्तर (तस्थुः) स्थित हैं।

कालूराम जी का आक्षेपः (१) विशेष प्रकट होता है बस इसी को अवतार कहते हैं

(२) गर्भे का गर्भस्थ जीवात्मा अर्थ किया है यह जीवात्मा कहां से निकला? गर्भे यह अधिकरणमें सप्तमी है स्वामीजीने अपने अर्थ में कर्त्ता की प्रथमा कर दी। यह उनकी भारी भूल है पर ऋग्वेद भाष्य भूमिका में गर्भे पद का अर्थ गर्भ में ऐसा ही किया है जिससे इन कल्पित अर्थों पर पानी फिर गया।

(३) योनि पद का अर्थ स्वरूप किया है क्या स्वरूप वाला भी निराकार होता है?

(४) सायण महीधर उव्वट दुर्गाचार्य्य गिरधर आदि विद्वानों और भाष्यकारों ने अवतार होना माना है फिर किसी का छल करके अर्थ का अनर्थ करना उसकी नादानी नहीं तो क्या है?

समीक्षा—भूत वही जो शिरपर चढ़कर बोले जो कभी न पैदा हुआ, वह क्या आगे पैदा होगा? इसमें हेतु क्या है?

यदि शरीर धारण करता है, तो मन्त्र में का यह भाग "उस ईश्वर के स्वरूप को धीर (ब्रह्मवेत्ता लोग) देखते हैं" निरर्थक हो जायगा। क्योंकि जब शरीरी हो गया तो उसे सब ही देखेंगे। ब्रह्मवेत्ता पद की आवश्यकता ही क्या!

यह "धीर" शब्द ही आपके अर्थ पर पानी फेर देता

है। 'विश्व के भुवन' ऐसा अर्थ करना नादानी है। विश्व विशेषण है। आपने विश्व को भुवन से भिन्न कर दिया। धन्य है आपकी पण्डिताई !!

प्रकट होने का अर्थ अवतार करना नादानी है। उसमें निम्न दोष आवेंगे।

(क) शरीरी संसारिक दुःख-सुख से बच नहीं सकता। जैसे राम कृष्णादि सब ही जिन्हें अवतार माना जाता है, दुःखी रहे हैं। परन्तु परमात्मा सच्चिदानन्द है। वह दुःख सुख से परे है।

(ख) जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्म वादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्, इस श्रुति से विरोध होगा। इसमें परमात्मा के जन्म का अभाव बतलाया गया है।

(ग) स पर्य्यगात्, इस श्रुति में स्वामी शंकराचार्य्य तथा महीधर के अर्थ के अनुसार ब्रह्म स्थूल सूक्ष्म करण तीनों प्रकार के शरीरों से रहित बतलाया गया है। इस लिये आपके अर्थ से इन श्रुतियों से बड़ा भारी विरोध होगा।

ऐसी दशा में प्रकट होने का अर्थ अवतार लेना नहीं बन सकता।

क्या किसी कोष में प्रकट होने का अर्थ अवतार लेना लिखा है ?

किसी आचार्य्य ने माना है ? नहीं नहीं। दिखलाइये हम मानलेंगे।

प्रश्न—तब प्रकट होता है, इसका क्या भाव है ?

इसका भाव तो स्वामीजी के अर्थ से ही प्रकट है। वह अन्तः करण में प्रकट होता है। उसी अन्तः करण में प्रकट हुये परमात्मा के स्वरूप को ब्रह्मज्ञानी देखते हैं।

स्वामी जी के अर्थ का स्पष्टी करण यह है:—

(प्रजापतिः) परमात्मा (गर्भे) गर्भस्थ जीव या गर्भ में (चरति) व्यापक है। विचरता का अर्थ व्याप्त होने के है [चरगति भक्षणयोः। गति=गमन ज्ञान प्राप्ति यथा स पर्यगात्=नभोवत् सर्वं व्या प्नोति इति महीधरः] (अजाय-मानः) अपने स्वरूप से उत्पन्न न होने वाला वह परमात्मा (अन्तः) अन्तःकरण में (विजायते) योगियों को प्रकट होता है इत्यादि......

गर्भ का अर्थ लक्षणासे हिरण्यगर्भ भी लिया जा सकता है।

वह परमात्मा गर्भस्थजीव में, अथवा हिरण्य गर्भ में व्यापक है। अपने स्वरूप से उत्पन्न न होने वाला योगियों के हृदय में प्रकट होता है और उसके स्वरूप को योगी लोग देखते हैं। स्वामीजी के भाष्य का यही भाव है।

(२) आप पूछते हैं कि गर्भे से गर्भस्थ जीवात्मा कहां से आ गया। उत्तरमें निवेदन है कि यह अर्थ लक्षणा से किया गया है। ऐसा सायण महीधरादि सब ही आचार्यों ने किया है। यथा नभोवरेण्यं (यजु ७-२१) इसका अर्थ

महीधर ने किया है—नभस्थैः देवैः प्रार्थनीयम्-आकाश में रहनेवाले देवताओं से प्रार्थनीय। क्या आप बतला सकते हैं कि महीधर के अर्थ में नभ शब्द में से देव कहाँ से टपक पड़े? *

स्वामीजी ने सप्तम्यन्त पद को प्रथमान्त में नहीं रखा है, आप को हिन्दी समझ में न आवे, तो दोष किसका? भला गर्भस्थ जीवात्मा प्रथमान्त मानो तो अर्थ क्या होगा? इसका भी ध्यान रखा या आक्षेप ही करने लग गये? वहां तो स्पष्ट लिखा है कि गर्भस्थ जीवात्मा और अन्तः करण में विचरता है। आपको न सूझे तो स्वामी का क्या दोष? पर आपको तो झूठ बोलने और लिखने का एक रोग हो गया है फिर आप का क्या दोष? भूल आप की, पर दोष दें स्वामी जी को, धन्य हो महाराज!

आपने लिखा है कि यहां तो गर्भ का अर्थ गर्भस्थ जीवात्मा किया पर ऋग्वेद भाष्य भूमिका में गर्भ का अर्थ गर्भ में किया है जिससे इन कपोल कल्पित अर्थों पर पानी

---

* भुवस्पतिः—भू शब्देन भूमौ स्थितानि भूतानि यजमानाध्वर्यु प्रभृतीनि उच्यन्ते (यजु०४·२४) भू शब्द से भूमिपर रहने वाले ऋत्विक् यजमान आदि ग्रहण किये गये हैं। कहिये यह अर्थ महीधर ने कैसे किये? जैसे महीधर लक्षणासे अर्थ करते हैं वैसे स्वामी जी भी करते हैं, तो फिर पेट में बाव गोला क्यों उठता है?

फिर गया। क्या पानी फिर गया ? इसे आपने नहीं लिखा। इस चाल से भी कहीं दूषण दिया जाता है !

३-आप पूछते हैं कि क्या स्वरूपवाला भी निराकार होता है।

आप की पण्डिताई की यहां ही हद्द हो गयी। इन्होंने स्वरूप का अर्थ साकार समझा। पत्थर पड़े ऐसी बुद्धि पर और ऐसी पण्डिताई पर। पण्डितजी महाराज ! स्वरूप का अर्थ आकार नहीं होता। हर एक पदार्थ का कोई न कोई अपना रूप होता है जिसके द्वारा उसका ज्ञान होता है। वायु निराकार है, परन्तु उसका भी रूप है। रूप्यते अनेन इति रूपम्। जिससे जाना जा सके वह रूप कहलाता है।

आकाश का भी स्वरूप है, पर वह निराकार ही है। परमात्मा का भी स्वरूप है, परन्तु जैसा आप समझते हैं, वैसा नहीं।

(४) दुर्गाचार्य्य का तो इसपर भाष्य नहीं है। रह गये उव्वट महीधर अथवा सायणाचार्य्य।

इन लोगों ने भी इस मंत्र पर से अवतार नहीं माना है। आपका काम ही झूठ बोलकर अन्धी भेड़ों को फँसाना है। देखिये उव्वट भाष्य। स एव पुरुषः एकांश भूतः प्रजापतिः अस्य गर्भस्य अन्तः अजायमानः चरति चतुर्विधेषु भूतेषु। स एव जायमानः बहुधा अनेक प्रकारं विजायते।

वही पुरुष इस गर्भ के भीतर न उत्पन्न होने वाला चार

प्रकार के, प्राणियों में व्याप्त हो रहा है। वही अनेक प्रकार से प्रकट होता है।

महीधर का अर्थ—यश्च अनुत्पद्यमानो नित्यः सन् बहुधा कार्य कारण रूपेण विजायते मायया प्रपंच रूपेणोत्पद्यते।

जो पैदा न होने वाला नित्य होते हुए कार्य कारण रूप से अनेक प्रकार से प्राकृति के साथ प्रपंचरूपमें उत्पन्न होता है। अन्त में लिखा है कि सर्वं तदात्मक मित्यर्थः। सबही पदार्थ उससे पूर्ण हैं यही इसका भाव है। पाठक अब देखें कि इन दोनों ने कहां अवतार माना है ? फिर कालूराम झूठ क्यों लिख रहे हैं ? उनसे पूछिये।

यदि कोई कहे कि यहां पर उत्पन्न होना स्पष्ट उन्हों ने लिखा है, तो उसे समझ लेना चाहिये कि यहां पर प्रपंच की उत्पत्ति का अध्यारोप ब्रह्म में है। महीधरने स्पष्ट लिख दिया है। प्रपंच उत्पन्न होता है, ब्रह्म प्रपंच से वाहर नहीं है। किन्तु उसमें ओत प्रोत है इसी लिये प्रपंच की उत्पत्ति का आरोप प्रजापति में हुआ है।

ब्रह्मावतार।

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वोयो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये॥

यजु० अध्याय ३१ मंत्र २०

अर्थ–जो देवताओं के लिये तपता है, जो देवताओं के

पहले स्थित था, जो देवताओं से पूर्व प्रकट हुआ, उस तेज वाले ब्रह्मा के लिये नमस्कार है।

देखिये। ब्रह्मा का अवतार वेद में है। पं० शिवशंकर ने ब्रह्मा का अर्थ वायु करके यह साबित कर दिया है कि स्वामीजी का अर्थ गलत है।

(१) हम दिखलाना चाहते हैं कि महीधरने "यो देवेभ्यः" इस मन्त्र के अर्थ में ब्रह्मा का अवतार लिखा।

(२) इसी मन्त्रपर उव्वट लिखते हैं, ब्रह्मये ब्रह्म पुरुषापत्याय नमः। जो देवताओं के पूर्व प्रकट हुवा, उस ब्रह्म पुरुष को नमस्कार है।

(३) स्वामी दयानन्द ने प्रथम समुल्लास में ब्रह्मा का नाम ईश्वर लिखा है।

(४) तदण्डम भवद्धैमं" इस मनुकी टीका में पं० तुलसी'रामजी ने पितामह ईश्वर ब्रह्मा का प्रकट होना लिखा है'।

स्वामी जी ने यजुर्वेद में इस मन्त्र को सूर्य परक किया है। ऋ० भा० भू० में दूसरी तरह से यह क्यों ईश्वर परक लगाया।

(६) स ब्रह्मा स विष्णु स रुद्रः स शिवः सोक्षरस्स परमः स्वराट् स इन्द्रः स कालाग्नि स चन्द्रमाः।

वही ब्रह्मा विष्णु शिव अक्षर परमस्वराट इन्द्र कालाग्नि चन्द्रमा है, इसमें ब्रह्मा नाम परमात्मा का स्पष्ट लिखा है।

(७) ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य

गोप्ता। देवताओं में ब्रह्मा पहले पैदा हुआ जो विश्वका कर्त्ता और भुवन का रक्षक है।

(८) तदंडमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः॥

अण्डे में से ब्रह्मा स्वयं पैदा हुये इन सब प्रमाणों से ब्रह्माका अवतार सिद्ध है।

समीक्षा—क्या २४ अवतारों में ब्रह्मा का अवतार है? यदि नहीं तो ब्रह्माका एक नया अवतार कहांसे लाये। क्या आपका यह नया आविष्कार आपके पूर्वजोंको नहीं सूझा था?

एक मंत्र के दो अर्थ होने पर एक ठीक और दूसरेको गलत करने वाला पाखण्डीहै। यदि वह उसके खण्डन में दलील नहीं देता!

कालूरामजी को दलील देना चाहिये था कि अमुक अर्थ अमुक हेतु से गलत है। महीधरने एक ही मंत्र के दो दो तीन तीन अर्थ किये हैं*। क्या वे परस्पर विरोधी होने से अमान्यहैं। महीधरने कहीं पर ब्रह्माका अवतार नहीं लिखा, किन्तु इस मन्त्रका अर्थ महीधर ने सूर्य परक लगाया है। यः प्रजापतिरादित्यरूपो देवेभ्योर्थायातपति द्योतते। यश्च देवानां पुरो हितः सर्वकार्येषु अग्रेनीतः।, यश्च देवेभ्यः

* यजु० ५।१४,५।१५,७।१२

सकाशात् पूर्वं जातः प्रथम मुत्पन्नः तस्मै आदित्यायनमः। कीदृशाय, रोचते सौ रुचस्तस्मै दीप्यमानाय। तथा ब्राह्मये ब्राह्मणो पत्यं ब्राह्मिः। ब्रह्मावयवभूताय वा।

भावार्थ—जो प्रजापति आदित्यरूप से देवताओं के लिये तपता है (धूप और गर्मी देता है। जो सब कार्यों में देवों से पहले रक्खा जाता है। जो देवताओं से पहले उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्म के पुत्र सूर्य को नमस्कार है।

कहिये कालूरामजी ब्रह्मा का अवतार कहां गया? उव्वट की पंक्ति तो दे दी, पर अपत्य का अर्थ जान बूझकर छोड़ दिया। उव्वट ने तो स्पष्ट लिखा है ब्रह्म पुरुष के अपत्य के लिये।

आपने अपत्य शब्द क्यों छोड़ दिया? या तो आप को स्वयं इसका ज्ञान न था अथवा जान बूझकर जैसा कि आपकी आदत है, पाखण्ड रचा है। पाखण्ड आप रचें, कुटिलता आप करें। बचाव के लिये उव्वट महीधर का नाम ले लें, यह कहां की सभ्यता है?

आगे आपने संख्या २ से ८ तक में यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि ब्रह्मा नाम ईश्वर का है। अब इसी पर विचार किया जाता है।

(१) शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। भिन्न भिन्न स्थलों में उनके भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। परन्तु यहाँ भी ब्रह्मा शब्द नहीं है। आप ब्रह्मा लाये कहां से? यहां तो

ब्राह्मि शब्द है जिसका चतुर्थी पद ब्राह्मये वेद में आया है। ब्रह्मणः अपत्यं ब्राह्मिः। ब्रह्म का अपत्य वाचक शब्द ब्राह्मि है। परमात्मा से जो पैदा हुआ वही ब्राह्मि है जिसका दूसरा नाम आदित्य वा सूर्य है। महीधर ने अपने अर्थ में इसका अर्थ सूर्य ही किया है यहां पर यही अर्थ उपयुक्त है।

(२) इस मन्त्र में ब्रह्मा शब्द नहीं, पर आपने मनु का श्लोक देकर लिखते हैं कि अण्ड से पहले ब्रह्मा पैदा हुआ। अब इसी बात को यहां पर निर्णय करना है कि मनुस्मृति में जिस ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन है, वास्तव में वह कोई मनुष्य है या और कोई है जिसका अन्वेषण आज तक किसी ने किया ही नहीं।

मत्स्य पुराण अध्याय २ में लिखा है—

> अप एव ससर्जादौ तासुबीजमवासृजत्।
> तदेवांडं समभवत् हेमरूप्यमयं महत्॥
> संवत्सर सहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभम्॥२६॥
> प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्म संभवः।
> प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत्पुनः॥
> तदन्तर्भगवानेषः सूर्यः समभवत्पुरा॥
> आदि त्यश्चादि भूतत्वात् ब्रह्मा ब्रह्मपठन्नभूत्॥३१॥

परमात्मा ने पहले (अप) आकाश उत्पन्न किया उसमें

बीज बो दिया। उस बीज से हजारों सूर्य के समान, सुवर्ण और रजतमय एक अण्डा सहस्र वर्ष में बन गया। महातेजस्वी परमात्मा उसमें प्रवेश करके उसतेज की व्याप्ति के प्रभाव से विष्णुत्व को प्राप्त हुआ उस अण्डे के अन्दर यह सूर्य पहले उत्पन्न हुआ। आदि में होने के कारण वह आदित्य हुआ और वेद पढ़ने के कारण वह ब्रह्मा हुआ।

अब मनुस्मृतिका श्लोक उठाइये—

सोभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षु र्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥

उसने ध्यान मात्र से अपने प्रकृतिरूप शरीर से अनेक प्रजाओं के उत्पन्न करने की इच्छा से पहले आकाश उत्पन्न किया और उसमें अपना शक्ति रूप बीज डाल दिया। वह बीज सुवर्ण के समान अण्डा बन गया जिसकी प्रभा सहस्रों सूर्य के समान थी, उसमें सब लोक के पितामह ब्रह्मा स्वयं उत्पन्न हुये।

मत्स्य पुराण और मनुस्मृति दोनों के श्लोकों को मिला कर देखिये कि ब्रह्मा सूर्य ही है या और कोई? इसको ईश्वर ने बनाया ऐसा मनुस्मृति स्वयं कहती है।

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषः लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥

जो सब पदार्थों की उत्पत्ति का कारण उत्पत्ति विनाश रहित नित्य, अव्यक्त (वहिरिन्द्रियागोचर) वेदान्त से सिद्ध होने के कारण सत्स्वभाव, तथा प्रत्यक्षादि से अगोचर होने के कारण असत्स्वभाव परमात्मा है। उसका बनाया हुआ वह पुरुष ब्रह्मा कहलाता है ॥

उसी अध्याय में पुनः लिखा—

स सिसृक्षुर भूद्देवः प्रजापतिररिन्दम।
तत्तेजसश्च तत्रैव मार्तण्ड समजायत ॥३५॥

हे अरिन्दम, प्रजापति परमेश्वर को सृष्टि बनाने की इच्छा हुई। उसी के तेज से उस अण्डे में मार्तण्ड (सूर्य) पैदा हुआ।

मृतेण्डे जायते यस्मात् मार्तण्डस्तेन संस्मृतः।
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः।
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोक पितामहः ॥

उस महात्माका रूप रजोगुण मय है। वह (चतुर्भुज चारों ओर मुखवाला) भगवान् ब्रह्मा लोक पितामह नामसे प्रसिद्ध है।

इसी सूर्य का नाम हिरण्य गर्भ है। कुल्लूक भट्ट ने अपनी टीका में (श्लोक ६) ब्रह्माका अर्थ हिरण्यगर्भ किया है।

वेद में लिखा है—

तमुष्टुहि यो अन्तः सिन्धौ सूनुः।
सत्यस्य युवान मद्रो घवाचं सुशेवम् ॥

अत्यन्त बल युक्त युवा (जरामरण रहित) उसी की स्तुति द्रोह रहित वाणी से करो जो अन्तरिक्ष के मध्य में

परमात्मा का पुत्र है। सिन्धुः=आकाशः। यहां पर और वस्तुओं की अपेक्षा से अमरत्व का प्रयोग है। देखिये महीधरभाष्य २-३१ तथा ३-३४ जिनमें अमृत शब्द घृत आदि के लिये प्रयुक्त हुआ है।

हिरण्य गर्भः समवर्त्तताग्रे इस मन्त्र के भाष्य में अथर्व वेद में सायण ने हिरण्य गर्भ का अर्थ सूर्य ही किया है।

सूर्य ही से तमाम चीजें पैदा हो रही हैं, उसी से नाश भी हो रही हैं उसी से पालित भी हो रही हैं इस लिये इसी सूर्य का नाम विष्णु और रुद्र भी है। पुराणों में तीनों का एक ही रूप बतलाया गया है। विषयान्तर हो जाने के भय से मैं आगे जाना नहीं चाहता। जिस बात को सिद्ध करना था उसे यहां पर दिखला दिया गया। ब्रह्मा को सूर्य मानने पर ही पुत्री गमन का दोष हट सकता है अन्यथा नहीं।

कालूराम जी का एक और आक्षेप है। स्वामी जी ने जातः का अर्थ प्रसिद्ध किया है इस पर कालूराम जी कहते हैं यह अर्थ कोई नहीं मान सकता। आप कहते हैं कि इसके लिये किसी कोष तथा व्याकरण का प्रमाण नहीं है। पर आप यह तो बतलाइये कि महीधर भाष्य में आरभे का अर्थ स्पृशामि (यजु० ४-६) मज का अर्थ स्थापय (यजु० ४-२८) ऋषि का अर्थ गौ (यजु० ३-१८) यज्ञ का अर्थ यजमान का शरीर (यजु० ७-२२) कैसे मानियेगा ? क्योंकि

इनके लिये भी कोष प्रमाण नहीं। महीधराचार्य्य के ये अर्थ आप को जिस हेतु से मान्य हैं उसी हेतु से स्वामी जी के जातः पदका अर्थ प्रसिद्ध भी आप को मानना पड़ेगा।

पण्डित कालूराम के सम्पूर्ण आक्षेपों का उत्तर सप्रमाण हो चुका। अब मन्त्र का अर्थ सुनिये। यह नीचे का अर्थ महीधर के अनुसार है।

(यो देवेभ्य आतपति) जो वायु पृथिवी आदि देवताओं के लिये तपता है (यो देवानां पुरोहितः) जो देवताओं में पहले स्थापित पुरोगामी अर्थात् प्रधान है। (पूर्वो यो देवेभ्यो जातः) जो सब देवताओंसे पूर्व उत्पन्न हुआ। उस देदीप्यमान ब्रह्म पुत्र के लिये (नमः) नमस्कार है।

वराहावतार

आप के दिये हुये प्रमाणों की समालोचना करने के पूर्व आप वाराह अवातार की कथा श्रीमद्भागवत के अनुसार सुन लीजिये।

ब्रह्मा के शरीर के दो भाग हो गये जो पुमान् था वह स्वयं भुव मनु था, जो स्त्री थी वह शतरूपा हुई। ब्रह्मा ने मनु से सृष्टि करने को कहा तो मनु ने कहा कि पृथिवी कहां है ? जिस पर सृष्टि की जाय। वह तो जल में डूबी हुई है। ब्रह्माने विष्णु का स्मरण किया स्मरण करते

ही ब्रह्मा की नाक से एक अंगुष्ठ मात्र वराह पैदा हो गया देखते देखते वह हाथी के समान बढ़ गया। वह वराह सूँघते सूँघते जल में घुस गया। पृथ्वी को पाकर अपने डाढ़ पर रख कर जब चला तो हिरण्याक्ष ने उसका मार्ग रोक लिया। तब वराहने उसको मार डाला और पृथ्वी को लाकर पानी पर स्थापन किया।

इसी कथा के सिलसिले में हिरण्याक्ष के जन्म का हाल भी जान लेना चाहिये क्योंकि इस कथा से उसका सम्बन्ध है यह कथा भी भागवत की है दक्ष की कन्यादिति काम पीड़ित होकर कश्यप के पास सायंकाल को गई। कश्यप ने कहा कि दो घड़ी और ठहर जा, पर उसने न माना। कश्यप ने उससे भोग किया और दिति को १०० वर्ष तक गर्भ रहा उससे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो लड़के पैदा हुये।

पाठकवृन्द! अब आप कथा पर विचार कीजिये। क्या यह कथा अलिफलैला की कथा के समान सोलहो आना गप्प नहीं है। जब ब्रह्मा कोई देहधारी व्यक्ति था, जैसा कि ये पौराणिक मानते हैं और उसके शरीर के दो भाग हो गये तो फिर ब्रह्मा जिन्दा कहां रहा? ब्रह्मा तो मनु और शतरूपा में परिणत हो गया। फिर मनु को सृष्टि पैदा करने को कैसे कहेगा? दूसरी बात यह विचारणीय है कि जब भूमि थी ही नहीं तब मनु और शतरूपा कहां पर खड़े थे? ब्रह्मा और विष्णु में क्या अन्तर है? ब्रह्मा क्या विष्णु

से भिन्न है? यदि है तो उसका पोज़ीशन क्या है? इनमें ईश्वर कौन था? क्या विष्णु इतना अज्ञ था जो सूंघ-सूंघ कर जल में उसे पृथिवी खोजनी पड़ी। क्या वह सर्वज्ञ नहीं था अथवा शूकर देहधारण करने से पूरा शूकर ही हो गया था। और जल किस पर स्थित था? जब पृथिवी थी ही नहीं? इस सबका उत्तर आपके पास क्या है? मैं तो समझता हूँ और विश्वास भी है कि इसका उत्तर अकल के पीछे लाठी लेकर चलने वाले श्रीकालूरामजी कभी न दे सकेंगे।

सब से भारी गप्प तो हिरण्याक्ष का वहां पर उपस्थित कर देना है। जब पृथिवी जल में डूबी थी, सृष्टि उत्पन्न ही नहीं हुई थी, तो दिति और कश्यप कहाँ से आ गये? जब दिति की सत्ता मौजूद थी तो उसके बाप दक्ष और उनकी ६० कन्याओं का उपस्थित रहना भी सिद्ध है। कालूराम शास्त्री बतलावें ये सब कहाँ पर थे? जब इनकी सत्ता से ही पृथिवी का होना सिद्ध है। फिर पृथ्वी का जल में डूबा रहना कहाँ तक सत्य कहा जा सकता है? दिति के साथ कश्यप ने भोग कहाँ किया? और १०० वर्ष तक गर्भ धारण करके वह कहाँ थी यदि पृथिवी न थी। दोनो भाई पैदा हुये कहां पर पैदा हुये। पृथिवी पर या पानी पर। क्या हिरण्यकशिपु कश्यप और दिति दोनों पानी के जन्तु तो नहीं थे?

क्योंकि उस समय पानी ही पानी था। पृथिवी डूबी हुई थी। फिर सिवाय जल जन्तुओं के ये और क्या हो सकते हैं,

लिंग पुराण अध्याय ९६ में लिखा है—

हिरण्यकशिपु दैत्य बड़ा बलवान था, ब्रह्मा से वर पाकर अजेय हो गया। उससे पीड़ित होकर सब देव ऋषि लोग शम्भु के पास गये। वेसब को लेकर विष्णु के पास गये। ब्रह्मा से स्तुति किये जाने पर विष्णु ने कहा—

श्रुत्वा तद्दैवतै रुक्तं स विष्णुर्लोक भावनः ॥ ३५ ॥

वधाय दैत्य मुख्यस्य सोऽसृजत्पुरुषं स्वयम् ।

मेरु पर्वत वर्ष्माणं घोर रूपं भयानकम् ॥ ३६ ॥

शंख चक्र गदापाणिं तं प्राह गरुड़ध्वजः ॥

हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्य कशिपुं पुनः ।

इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात् ॥

निशम्य वैष्णवं वाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम् ॥

महा पुरुष मव्यक्तं ययौ दैत्य महापुरम् ॥

देवताओं की बात सुनकर विष्णु ने उसे मारने के लिये एक पुरुष को उत्पन्न किया जिसका शरीर मेरु पर्वत के समान भयानक था। उससे विष्णु ने कहा कि तुम उसे मार कर लौट आओ, वह वहाँ जाकर गरजने लगा तब हिरण्य कशिपु अपने पुत्रों के साथ लड़ने के लिये निकला।

ततः सहासुरवरैः हिरण्यकशिपुः स्वयम् ।
सन्नद्धैः सायुधैः पुत्रैः सप्रह्लादैस्तथा ययौ ॥ ४२ ॥

असुरों के मार से वह नरसिंह पुरुष भागा और जाकर विष्णु से उसने सब हाल कहा । अब विष्णु स्वयं नरसिंह बनकर आये । उन्हें मारने के लिये हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र प्रहलाद को भेजा । जब युद्ध में प्रहलाद पराजित हो गया, उसके पाशुपतादि अस्त्र सब व्यर्थ हो गये तब प्रहलाद उन्हें वासुदेव समझकर अस्त्र त्यागकर उनको शरण में चला गया और पिता से सब हाल कहा । पिताने न माना और नरसिंह ने उसे फाड़ डाला । इसके बाद हिरण्याक्ष गद्दीपर बैठा । वह वेद और पृथिवी को रसातल में ले गया तब वराह ने शरीर धर कर उसे मारा । बाद में प्रहलाद राजा हुआ इत्यादि ।

इस कथा से स्पष्ट है कि सृष्टि हो चुकी थी । फिर भागवत की कथा किस प्रकार मान्य हो सकती है । इस कथा में नरसिंहावतार की कथा भी भागवत से बिल्कुल भिन्न है । इस लिये प्रहलाद की कथा बनावटी है । ईश्वर की महत्ता प्रकट करने के लिये इस कथा की रचना की गई है न कि स्वतः कोई अवतार हुआ है । हिरण्यकशिपु के बाद हिरण्याक्ष के राजा होने की बात इस कथा में लिखी है । भागवत में कुछ और ही प्रकार से । इससे वाराहावतार की कथा काल्पनिक है । वेदादिका रसातल में ले जाने का भाव

वेदादि का अनादर करना है। आज भी कहा जाता है कि अमुक आदमी ऐसा पापी निकला कि धर्म को रसातल में भेज दिया अपने बेटे को रसातल में भेज दिया। इत्यादि।

पृथिवी का रसातल में जाना भी गप्प है। रसातल भी तो पृथिवी का एक अन्दरूनी भाग है। फिर इस पृथिवी को कैसे ले जायगा? यदि ले गया तो उसपर के रहने वाले लोग कहां चले गये थे? नगरादि क्या हुये? क्या उसपर मनुष्य न थे? यदि न थे तो वह राज्य किस पर करता था? इन सब बातों पर ध्यान पूर्वक विचारने से 'यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिरण्याक्ष का, यदि वह कोई व्यक्ति विशेष था, पृथिवी को रसातल में उठा कर ले जाना किसी प्रकार भी संगत नहीं हो सकता। भागवत की कथा और इस कथा में कितना अन्तर है। अतः दोनों कथायें काल्पनिक हैं। वराह का कुछ और ही भाव है जिसे आगे बतलाया जायगा।

पुराणों में लिखा है कि जब प्रलय होने को होता है तो सूर्य का तेज बहुत बढ़ जाता है। पृथिवी जल भुनकर खाक हो जाती है। तब फिर मेघ पैदा होकर पानी बरसने लगता है इस तरह फिर से पृथिवी हरी भरी हो जाती है और सृष्टि पैदा होती है। वि० पु० श्री कृष्ण जन्म खण्ड अ० ६ अध्याय २। लय तीन प्रकार का होता है ब्राह्म, प्राकृतिक आत्यंतिक।

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तेषां कल्पान्ते प्रतिसंचरः।
आत्यंतिकस्तु मोक्षाख्यः प्राकृतो द्विपरार्द्धकः॥

मोक्ष को आत्यंतिक लय कहते हैं। दो शंख वर्ष बीतने पर प्राकृतिकलय होता है। सम्पूर्ण व्यक्त सृष्टि अपने कारण अव्यक्त में लय हो जाती है। उस एक कल्प में १४ मनु होते हैं। इसके अन्त में ब्राह्मनैमित्तिक लय होता है। प्राकृतलय का यहाँ पर ऐसा वर्णन है:—

चारों युगों के सहस्र बार बीतने पर शतवार्षि की अनावृष्टि होती है। जिससे पृथिवी पर के सब ही जीव जन्तु तथा वृक्षादि नष्ट हो जाते हैं। तब भगवान विष्णु सूर्य की सातो किरणों में स्थित हो कर सम्पूर्ण जलों को सोख लेते हैं समुद्रादि सब ही सूख जाते हैं। लेशमात्र भी कहीं पर जल नहीं रहता। वही ७ रश्मियां ७ सूर्य हो जाती हैं। इस प्रकार ७ सूर्य पाताल तल के साथ त्रैलोक्य को भस्म कर देते हैं। उस समय यह पृथिवी कूर्म पृष्ठ के समान हो जाती है। सम्पूर्ण संसार के जल जाने पर जनार्द्दन के मुख निश्वास से मेघ पैदा होते हैं और मूसलधार पानी बरसाने लगते हैं और उस भयानक अग्नि को शान्त कर देते हैं। इस प्रकार रात दिन बराबर वृष्टि होने से संसार जलमय हो जाता है। सौ वर्ष तक वृष्टि होती रहती है। वे बादल भगवान के निश्वास के वायु से अगले १०० वर्ष में नष्ट हो जाते हैं। संसार जलमय हो जाता है। भगवान उसमें शयन करते

हैं। इसी का नाम नैमित्तिक प्रलय है। फिर ब्रह्मा के १ दिन पर्य्यन्त उसमें सोते रहते है। जागने पर फिर सृष्टि करते हैं।

प्राकृतिकलय—जल भूमि के गन्धात्मक गुण को विनाश कर देते हैं। गन्धमात्र के नष्ट होने से पृथिवी जल स्वरूप हो जाती है। जल के गुण (शीतलता) को ज्योति पी जाता है। गुणके नष्ट हो जाने पर सम्पूर्ण जल ज्योतिर्मय हो जाता है अग्नि के गुण को वायु भक्षण कर जाता हैं जिससे सम्पूर्ण तेजवायुमय हो जात है। वायु के स्पर्श गुण को आकाश खा जाता है जिससे वायु आकाशमय हो जाता है। आकाश के शब्द गुण को अहंकार खा जाता है।

अहंकार को महान् हज़म कर जाता है। महान् प्रकृति में अन्तर्लीन हो जाता है।

ये नेदमावृतं सर्वमण्डमप्सु प्रलीयते।
सप्तद्वीप समुद्रान्तं सप्तलोकंसपर्वतम् ॥१३
उदकावरणं यत्तु ज्योतिषापीयते तुतत्।
ज्योतिर्वायौलयंयाति यात्याकाशेसमीरिणः॥
आकाशं चैव भूतादिग्रसते तं तथा महान्।
महान्तमेभिः सहितं प्रकृति ग्रंसते द्विज॥
गुणसाम्य मनुद्रिक्तमन्यूनं च महामुने।
प्रोच्यते प्राकृतिर्हेतुः प्रधान करणं परम्॥
इत्येषा प्रकृतिः सर्वा व्यक्ता व्यक्त स्वरूपिणी।

व्यक्तस्वरूप मव्यक्ते तस्मान्मैत्रेय लीयते॥
एकः शुद्धोऽक्षरो नित्यस्सर्वव्यापी तथा पुमान्
सोप्यंशः सर्वभूतस्य मैत्रेय परमात्मनः॥
परमात्मा च सर्वेषाँ आधारः परमेश्वरः।
विष्णुनामास वेदेषु वेन्दातेषु च गीयते॥

श्लोकों का भावार्थ ऊपर आ गया है। इसलिये अर्थ नहीं लिखता।

सृष्टि का लय किस प्रकार होता है। इसे पाठकों के सामने रख दिया। अब आपके सामने वाराह अवतार के मूल रहस्य को रखते हैं जिसे जानने में आज तक के पौराणिक असमर्थ रहे हैं और व्यर्थ झूठी कथा रचकर संसार में अन्धकार फैलाया है।

हिरण्याक्ष सूर्य का नाम है* वराह मेघ और यज्ञ का वाचक है ऊपर की प्रलय कथा में आपने देख लिया सूर्य ही पृथ्वी का संहार करता है। जब पृथिवी का संहार हुआ तो फिर वेद कहाँ? पृथिवी को जलाकर खाक कर देना ही उसे रसातल में ले जाना है। उसके रसातल में चले जाने पर मेघ पैदा होते हैं। ऊपर कथा में यह बात आयी है कि भगवान के निश्वास से मेघ उत्पन्न हुये। चूंकि ब्रह्मा ईश्वर का नाम और मेघ का नाम वराह है इस

---

* यजु-३४-२४ देखो महीधर भाष्य।

लिये अवतार की कथा में ब्रह्मा की नाक से वरा का उत्पन्न होना पुराण कारों ने लिखा। ऊपर कथा में यह बात आई है कि मेघों से वृष्टि होने के कारण अग्नि शान्त हुई। ध्यान रखना चाहिये कि अग्नि और सूर्य कोई दो नहीं किन्तु एक ही हैं। द्युलोक में वही सूर्य अन्तरिक्ष में विद्युत और पृथिवी पर अग्नि रूप से व्यवहार होता है।

इसलिये अवतार की कथा में यह बात लिखी गई कि वराहने हिरण्याक्ष को मार कर पृथिवी का उद्धार किया। क्योंकि मेघों के द्वारा ही प्रलयाग्नि की शान्ति होती है। चूँकि परमात्मा उस जल में व्यापक रूप से विद्यमान रहता है। पश्चात् पुनः सृष्टि होती है।

बस यही वराह-अवतार है। भागवत की कथा तो इस प्रकार असभव दोषों से ग्रस्त है कि उसे कोई बुद्धिमान किसी भी भाँति मान नहीं सकता। हिरण्याक्षका पृथिवी को ले जाना फिर वराह का पैदा होना, और हिरण्याक्ष को मार कर पृथिवी का उद्धार करना इत्यादि कथा जो अन्यत्र अन्य पुराणों में है वह इसी प्रलय की कथा पर से बनी है। मैं समझता हूं कि अब किसी भी पाठक को इस कथाके आलंकारिक होने में शंका न रही होगी। अब आप के वाराह अवतार के प्रमाणों पर विचारकर लीजिये।

वाराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय विजिहीते मृगाय।
अथर्व काण्ड १० अनुवाक १

कालूराम जी का अर्थ—वाराहरूपधारी प्रजापति ने यह पृथिवी उद्धार की है।

समीक्षा—आपका यह अर्थ तो गवारों के लिये डूबते का सहारा मिल गया, परन्तु इससे आप की धूर्तता का भी पता लग गया। कालूराम जी को इतनी भी शरम न आई कि यदि कोई विद्वान् इस अर्थ को देखेगा तो, क्या कहेगा इसका अर्थ यह है:—

वराह का अर्थ मेघ है। यह बतलाया जा चुका है। वराहस्य इद वाराहम् अर्थात् जल। सूकर=सूर्य। सुष्ठ कराः रश्मयः यस्यसः सुकरः छान्दसं दीर्घत्वम् सूकरः। विजिहीते=गच्छति। ओहाङ् गतौ इति धातोः लटि प्रथम पुरुषैवकवचने रूपम्। सं विदाना=सम्यक्गच्छन्ती। सम् विदुल्टलाभेशानच। धातूनामनेकार्थत्वादत्र गमनार्थम्। मृजूशु द्धौ—माष्टिं शोधयतीतिमृगः। शुद्ध करने वाला (यजु० ५-२० महीधर भाष्य)

अर्थ—वाराहेण जलेन सहसंविदाना सम्यक् गच्छन्ती पृथिवी मृगाय शोधकाय शोधकस्य परितः षष्ठ्यर्थेत्र चतुर्थी। विजिहीते गच्छति जलके साथ भली भाँति मिली हुई पृथिवी सर्व पदार्थों के शोधक सूर्य के चारों ओर घूमती है।

इयन्ती हवा इयमग्रे पृथिव्यासप्रादेशमात्रींतामेमूष इति वराह उज्जघान सोस्यापतिः प्रजापति 'रिति॥ शत० १४। १।२।११

कालूरामजी का अर्थ—पहले पृथिवी प्रादेशमात्र थी। उसको वराह ने उद्धार किया सो इसका पति प्रजापति है।

समीक्षा—शोक है, ऐसे पण्डितों की बुद्धि पर जो इस प्रकार असंभव अर्थ करके भोली भाली जनता को वंचित करते हैं। क्यों साहब बिलस्त भर ज़मीन को जल के भीतर से निकालने के लिये भगवान को वराहरूप धारण करना पड़ा? इसी बिलस्त भर जमीन पर सृष्टि की गई थी! कुछ बुद्धि से भी तो काम लेते?

वामनावतार।

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे॥ यजु० ५।१५०

अर्थ—ब्रह्म इस जगत को पैर से नापता भया। पाद को तीन प्रकार से रखा।

आक्षेप—

(१) इस मन्त्र का स्वामी दयानन्द, पं० तुलसीराम, पं० शिवशंकर इन तीन व्यक्तियों ने तीन प्रकार का भाष्य किया है। स्वामीजी के अर्थ को मिथ्या समझ कर पं० तुलसी राम ने अपनी लेखनी चलाई। पण्डित तुलसीराम जी के अर्थ को ग़लत समझ कर पं० शिवशंकर जी ने इसका अर्थ सूर्य परक कर दिया।

(२) प० शिवशंकर जी ने इस मंत्र के दो अर्थ किये हैं एक सूर्य परक और दूसरा ब्रह्मपरक।

(३) स्वामीजी ने विचक्रमे का अर्थ "रचना किया"। पण्डित तुलसीराम ने इसका अर्थ पुरुषार्थ युक्त किया। पं० शिव शंकर जी ने इसका अर्थ व्यापक किया। परन्तु तीनों ग़लत है।

(४) इसका कारण यह है कि विउपसर्ग पूर्वक क्रम धातु का अर्थ पाद प्रक्षेप ही में आत्मनेपद में होता है, दूसरे अर्थ में नहीं। अतः इदं विष्णु र्विचक्रमे का अर्थ हुआ " विष्णु ने इस जगत को पैर से नापा। "

(५) यह अर्थ निरुक्त के विरुद्ध है।

पं० कालूरामजी निरुक्त के अनुसार यह अर्थ करते हैं।

जो कुछ यह है उसको व्यापक ईश्वर पैर से नापता भया। और तीन प्रकार से पैर रखा। पृथिवी में अन्तरिक्ष में द्यु लोक में यह शाकपूणि का मत है समारोहण विष्णुपद गयशिर में यह और्णनाभ का मत है। सम्यक बढ़े हुये ब्रह्म का धूलि रेत में जैसे वैसे ही अन्तरिक्ष में पैर न दिखलाई दिया यहां पर अपि अव्यय उपमा में है। सम्यक बढ़े हुये रेत में जैसे पग नहीं दिखलाई देता वैसे ही न दिखलाई दिया। पैरों से धूलि पैदा होती है इस लिये धूली को पांसु कहते हैं।

समीक्षा—एक मंत्र के दो अर्थ अथवा तीन अर्थ होने से

एक को मिथ्या दूसरे को सत्य कहने वाला पाखण्डी है यदि वह अपने कथन की पुष्टि में दलील पेश नहीं करता। ऐसा आदमी वेद तो दूर रहे संस्कृत के काव्यों से अनभिज्ञ कहा जा सकता है। रामकृष्ण विलोम काव्य में एक एक श्लोक के दो दो अर्थ किये गये हैं कादम्बरी में तो दो अर्थों का भरमार है। परन्तु कोई भी इसे ग़लत कहने का साहस नहीं करता। स्वयं महीधर ने इसी मंत्र के दो अर्थ किये हैं तो क्या महीधर ने एक अर्थ को मिथ्या समझ कर दूसरा अर्थ किया है? एक मंत्र के एक नहीं दो नहीं तीन तीन अर्थ तो महीधर ने स्वयं किया है। देखो यजुर्वेद अ० १० मंत्र १६ यजु० ८-३, यजु० ७-१२, यजु० ६-२५ यजु० ४-१७ इत्यादि। क्या इन मंत्रों के अर्थों की ओर आपकी दृष्टि नहीं गई थी? निरुक्त में भी दो अर्थ कहीं कहीं पर किये गये हैं।

हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसद् इस मंत्र का अर्थ स्वामी शंकराचार्य ने उपनिषद् में ब्रह्म परक किया है। महीधरने यजु० १०-२४ में इसी का अर्थ सूर्य परक तथा रथ परक किया है। ऐसी दशा में क्या कोई बुद्धिमान आदमी यह कह सकता है कि स्वामी शंकराचार्य के अर्थ को मिथ्या समझ कर महीधर ने सूर्य परक अर्थ किया है और महीधर ने अपने सूर्य परक अर्थ को मिथ्या समझ कर रथ परक अर्थ किया है?

युंजते मन उत युंजते धियः इस मंत्र का अर्थ स्वामी शंकराचार्य्य ने श्वेताश्वतरोपनिषद् में ब्रह्म परक किया है।

महीधर ने यजु० अ० ११—४ में उससे भिन्न अर्थ किया है और इसी मंत्र का अर्थ स्वयं महीधर ने यजु० ५-१४ में दूसरी तरह दो प्रकार से किया है। क्या इनमें से एक अर्थ को मिथ्या समझ कर दूसरे ने दूसरा अर्थ किया है। इसी प्रकार युंजानः प्रथमं मनः (श्वे० २-१) युक्त्वाय मनसो देवान् (श्वे० २-३) युजे वां ब्रह्म (श्वे० २-५) इन मन्त्रों का अर्थ स्वामी शंकराचार्य्य ने ब्रह्म परक किया है और महीधर ने इन्हीं मन्त्रों का अर्थ यजुर्वेद अध्याय ११ में अग्नि चयन प्रकरण में अन्य प्रकार से लगाया है। कहिये, शंकराचार्य्य के अर्थ को मिथ्या समझ कर महीधरने विरुद्ध अर्थ किया है?

इसलिये आप का यह कहना कि स्वामीके अर्थ को ग़लत समझ कर पं० तुलसीराम ने दूसरा अर्थ किया, उनके अर्थ को ग़लत समझ कर पं० शिवशंकर ने तीसरा अर्थ किया, बिल्कुल बे बुनियाद और द्वेष मूलक है।

(३,४) आप कहेंगे कि मैंने उन लोगों के अर्थ के ग़लत होने में हेतु दिया है उन लोगों ने इसके विरुद्ध किया अतः ग़लत है।

इसमें भी वैदिक साहित्य से आप की अनभिज्ञता प्रकट हो जाती है। वैदिक और लौकिक शब्दों के अर्थ में हमेशा

अन्तर पड़ता है। धातु के अनेक अर्थ होने से यह नहीं कहा जा सकता विक्रम का अर्थ पाद विक्षेप के सिवाय और कुछ हो ही नहीं सकता। अय गतौ धातु पाणिनिव्याकरण में आत्मनेपद है, परन्तु वेद में परस्मै पद में प्रयोग मिलता है। और अर्थ भी व्याकरण के विरुद्ध है जैसे यजुर्वेद ७-७ में इसका अर्थ समर्पयामि किया गया है। क्या आप महीधर के इस अर्थ को पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध होने से न मानियेगा ?

भूष धातु का अर्थ अलंकृत करना होता है परन्तु महीधर ने इसका अर्थ यजु० ७-७ में आगच्छ "आओ" ऐसा किया है। शप का अर्थ गाली देना, अपशब्द कहना होता है परन्तु वेद में इसका अर्थ हिंसा करना महीधर द्वारा यजु० ६-२२ में किया गया है। दुह का अर्थ दूहने के होता है परन्तु महीधर ने यजु० ७-१२ में इसका अर्थ दहसि और विनाशयसि किया है। इसी प्रकार आबभूव का अर्थ पैदा किया, अन्वारभामहे का अर्थ आह्वान करते हैं ऐसा किया गया है तो क्या ये सब गलत हैं। ये सब भी पाणिनि व्याकरण के धात्वर्थ से विरुद्ध हैं, फिर आपको क्यों मान्य हैं ? जब महीधर का अर्थ पाणिनि मुनि के व्याकरण के धात्वर्थ के विरुद्ध होने पर भी मान्य है तो फिर स्वामी जी आदि के अर्थ के न मानने में आपके पास कौनसा हेतु है ?

निरुक्तमें इस का अर्थ निरुक्त के टीकाकार दुर्गाचार्य ने अधितिष्ठति किया है, क्या यह भी ग़लत है ? यजुर्वेद २-२५ में यज्ञ का क्रियापद यही विक्रम धातु का रूप व्यक्रंस्त है। क्या यज्ञ भी पैर से चलता है ? क्या आप ने यज्ञ के पैर देखे हैं ? इसी विक्रम धातु के विक्रम शब्द बनता है। इस विक्रम का अर्थ क्या पाद विक्षेप होता है ? भवता विक्रमः दर्शितः=आपने वीरता दिखलाई ? क्या यहां, यह अर्थ किया जायगा कि आपने अपनी चाल दिखलाई ? मित्र इस प्रकार शब्द के खींच तान से अवतार सिद्धि नहीं हो सकता।

(२) पं० शिवशकरशर्मा ने विष्णु का अर्थ सूर्य और ब्रह्म दोनों किया है तो इसमें गलती क्या है। विष्णु सूर्य का भी नाम है और ईश्वर का भी। उन्होंने मन्त्र का अर्थ दोनों में दिखला दिया तो क्या खता हो गई ?

(५) आप स्वयं निरुक्त के विरुद्ध अर्थ करते हैं और दूसरों पर इलज़ाम धरते हैं यही तो कलियुगी धर्माचार्यो का धर्म है। यदि ऐसा न करो, तो फिर पूछे कौन ?

खुद निरुक्त के विरुद्ध अर्थ करें, और दोष दूसरे के मत्थे रखें।

निरुक्त के बारहवें अध्याय में ३१ पदों की निरुक्ति है। ११ वे पद में विष्णु का वर्णन है।

विष्णुः ॥ ११ ॥

अथ यद्‌ विषितो भवति तद्‌ विष्णु र्भवति। विष्णु र्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा॥ १२।१८॥

इस पर दुर्गाचार्य्य का भाष्य यह है—

अथ यत्‌ यदा विषितः व्याप्तोऽयमेव सूर्यो रश्मिभिः भवति तत्‌ तदा विष्णुर्भवति। विशतेर्वा यदाविष्टः प्रविष्टः सर्वतो रश्मिभि- र्भवति तदा विष्णुर्भवति। व्यश्नोतेर्वा वि पूर्वस्य वाश्नोतेः, यदा रश्मिभिरतिशयेनायंव्याप्तो भवति व्याप्नोति वा रश्मिभिरयं सर्वं तदा विष्णुरादित्यो भवति॥

अर्थ—जब यह सूर्य रश्मियों के द्वारा व्याप्त होता है तबइसका नाम विष्णु कहलाता है।

जब यह रश्मियों के द्वारा अतिशय व्याप्त होता है तब विष्णु आदित्य कहलाता है।

इसी विष्णु शब्द की निरुक्ति करके इसके उदाहरण में निम्न लिखित मन्त्र दिया गया है।

इदं विष्णु र्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्‌।

समूढ मस्य पांसुरे।

निरुक्त—यदिदं किंच तद्‌ विक्रमते विष्णु स्त्रिधा निधत्ते पदम्‌ त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णनाभः समूढमस्य पांसुरे प्यायनेन्तरिक्षे पदं न दृश्यते। अपिवा उपमार्थे स्यात्‌ समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यते इति। पांसव। पादैः सूयन्त इतिवा पन्ना शेरत इतिवा। पिंशनीया भवन्तीतिवा॥

जब विष्णु शब्द की निरुक्ति में विष्णु को सूर्य कहा गया है तब इस मन्त्र का भी अर्थ सूर्य परक ही होना चाहिये। इस पर दुर्गाचार्य के भाष्य को देखिये:—

यदिदं किंचिद्वि भागेनावस्थितं तद्विक्रमते विष्णुः आदित्यः। कथमिति? यत आह। त्रेधा निदधे पदम्। निधत्ते पदम्। तत्र तावत्—पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः॥ पार्थिवोऽग्निभूत्वा पृथिव्यां यत्किंचिदस्ति तद्विक्रमते तदधितिष्ठति, अन्तरिक्षे विद्युदात्मना दिवि सूर्यात्मना यदुक्तम्—तमू अकृण्वन त्रेधा भुवे कम् (ऋ० सं० ८,४,११,५) समारोहणे उदय गिरावुद्यन् पदमेकं निधत्ते। विष्णुपदे माध्यन्दिने अन्तरिक्षे गयशिरसि अस्तं गिरौ इति और्णनाभः आचार्यौ मन्यते एवम्। समूढ मस्यपांसुरे अस्मिन् प्यायने एतस्मिन्नन्तरिक्षे सर्व भूतवृद्धि हेतौ यन्मध्यं दिनं पदं विद्युदाख्यं तत् समूढम् अन्तर्हितं न नित्यं दृश्यते। तदुक्तम्—स्वप्नमेतन्मध्यम ज्योतिरनित्य दर्शनम्॥ अपिवा उपमार्थे स्यात् समूढमिव पांसुले पदं न दृश्यते इति। यथा पांसुले प्रदेशे पदंन्यस्तमुत्क्षेपणसमनन्तरमेव पांसुभिराकीर्णत्वात् न दृश्यते। एवमस्य मध्यमं विद्युदात्मकं पदमाविष्कृतं समकालमेव व्यवधीयते नावतिष्ठत इत्यर्थः॥

दुर्गाचार्य ने यास्क की निरुक्तिका जो भाष्य किया है उसके अनुसार भावार्थ। जो कुछ यह विभाग से अवस्थित है अर्थात् इस दृश्य मान जगत में जो कुछ विभाग रूप से मौजूद

है उसमें आदित्य व्यापक है ! अर्थात् ऐसा कोई स्थान नहीं जहां सूर्य की गति न हो। किस प्रकार ? इसका उत्तर देते हैं। तीन स्थानों में अपने पद को स्थापन करता है । कहां कहां ? पृथिवी, अन्तरिक्ष और दिव लोक में ऐसा शाकपूणि आचार्य मानते हैं । पार्थिव अग्नि होकर पृथिवी में जो कुछ है उन सब में व्यापक है अन्तरिक्षमें विद्युद्रूप से, और द्युलोक में सूर्य रूपसे । जैसा कि तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम्, इस वेद मंत्र में कहा गया हैं। समारोहण अर्थात् उदय गिरि पर उदय होता हुआ एक पद रखता है, विष्णु पद अर्थात् अन्त रिक्ष में गय शिरसि अर्थात अस्ताचल पर, ऐसा और्णनाभ आचार्य्य मानते हैं इस अन्त रिक्षमें विद्युद रूप जो पद है वह छिपा रहता है नित्य नहीं दिखलाई देता है। अथवा यहां उपमा मान कर यह अर्थ करना चाहिये कि जैसे धूलिमय स्थान में रखा हुआ पैर का निशान पैर उठातेही धूल से व्याप्त हो जाने के कारण नहीं दिखलाई देता है उसी तरह विद्यु द्रूप उसका मध्यम पद आविष्कृत होने के साथ ही छिप जाता है। शेष नहीं रह जाता है।

अब पाठक स्वयं निर्णय करलें कि निरुक्त के अनुसार यहां पर कालूरामजी का अर्थ कहां ठीक है। इस प्रकार

---

† उदया चल और अस्थाचल कोई पहाड़ विशेष नहीं हैं, किन्तु सूर्य के उदय और अस्त होने के स्थान में ये दोनों शब्द रुढ़ हैं।

कालूरामजी संसार की आंखो में धूल झोंक कर अपना मतलब गांठने में बड़े से बड़े धूर्त और पाखण्डी किस प्रकार कम कहे जा सकते हैं।

पण्डित कालूरामजी ने समारोहण पद का अर्थ ही नहीं किया क्यों? इसलिये कि पोल खुल जायगी। इसी प्रकार गय शिरसि पद का अर्थ नहीं किया। समूढ़ पद का अर्थ "सम्यक बढ़े हुये" करना वैदिक साहित्य के ज्ञान का एक नमूना है। कहिये कालूरामजी, किस आचार्यने समूढ पद का अर्थ—सम्यक बढ़ा हुआ—किया है? आपने समूढ को अस्य का विशेषण बना लिया है यह भी आपकी वैदिक योग्यता का दूसरा प्रमाण है। मंत्र में न कहीं वामन पद न कहीं बलि पद, व्यर्थ में खींच तान करके अपनी बेवकूफी वेद पर मढ़ने चले।

पण्डि कालूराम सरीखे ही एक इसाई मुझे मिला। उसने मुझसे कहाकि तुम्हारे वेद में तो बड़ी गप्पें भरी हैं मैंने पूछा कि दो एक का उदाहरण तो दो। उसने कहा सुनिये सहस्र शृंगो वृषभोयः समुद्रादुचारत्। (सहस्र शृग) हजार सींग वाला (वृषभ) बैल है (यः) जो (समुद्रात्) समुद्र से (उदाचरत्) निकला। क्या यह गप्प नहीं? मैंने पूछा और? उसने कहा लो सुनो प्रपर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिच इयानाः।

यजु० ४।१६

पर्वत और बैल के पीठ पर से निकलती हुई, स्वयं पानी से चिक्कनावें चलती हैं। कहिये गप्प है या नहीं?

मैंने कहा कि तुम वैदिक शब्दों का अर्थ भाषा के शब्दों से करने लग गये और निरुक्त तथा वैदिक कोष को अलग रख दिया है इसी से तुम्हें भ्रम हुआ है। मैंने जब स प्रमाण मंत्रों का अर्थ करके उसे दिखला दिया तो वह बड़ा ही लज्जित हुआ। कहने लगा मैं तो आप की परीक्षा करता था।

ठीक यही दशा पण्डित कालूराम की है। मनमानी अर्थ करके निरुक्त का नाम लेकर जनता की आंख में धूल झोंक रहे हैं।

अच्छा अब पण्डित कालूराम शास्त्री का सबसे बड़ा पाखण्ड देखिये।

उपनिषद् वल्ली ५ मन्त्र ३ में वामन शब्द देख कर उससे अवतार सिद्ध करने लग गये। और मन्त्र का पूर्व भाग छोड़ दिया इस लिये कि उसे लिख कर अर्थ करेंगे तो पोल खुल जावेगी।

ऊर्ध्वं प्राण मुन्नयत्य पानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामन मासीनं विश्वेदेवा उपासते॥

शाँकर भाष्यानुरूप अर्थ—(यः) जो (ऊर्ध्वं) हृदय से ऊपर (प्राणं) प्राणवृत्तिवायु को (उन्नयति) ऊपर ले जाता है और (अपान) अपान वायु को (प्रत्यग्) नीचे (अस्यति) फेंकता है। (तं) उस (मध्ये) हृदयपुण्डरीक में

बैठे हुये (वामनं) आत्मा की (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) चक्षुरादि प्राणेन्द्रियां (उपासते) जैसे प्रजायें भेंट देकर राजाकी उपासना करती हैं वैसे ही उस आत्माके लिये अपना अपना व्यापार करती हैं।

जैसे एक ईसाई ईशावास्य" इस मन्त्र में ईशा शब्द से ईसा मसीह का ग्रहण अपनी अज्ञानता से करके अज्ञानी जनता को ठगता था और लोगों को ईसाई धर्म में प्रवृत्त करने के लिये प्रयत्न करता था, इसी प्रकार हमारे सनातनधर्म के नेता कहलाने वाले पण्डित कालूराम शास्त्री, उपनिषद् में वामन शब्द देखकर उससे वामनावतार की डुग डुगी पीटने लगे। पाठक ही बतलावें कि इस तुम्बा फेरीके कारण पण्डित जी को किस की पदवी दी जाय? क्या इसी तुम्बा फेरी और छल कपट से सनातन धर्म की रक्षा होगी?

आगे आप पुनः शत पथ ब्राह्मण का एक टुकड़ा पेश करके वामन अवतार ले बैठे।

वामनो ह विष्णुरास। शत १।२।५

अर्थ—वामन विष्णु है।

समीक्षा—पाठक वृन्द, आप पहले इदं विष्णुर्विचक्रमे—इस मन्त्र में देख चुके हैं कि विष्णु नाम आदित्य का है। शत पथ में इसी का वर्णन है। प्रातः कालीन उगते हुये सूर्य को वामन कहा गया है क्योंकि उस समय वह तेजहीन छोटा दिखलाई देता है। इस वामन का तो प्रतिदिन ही अवतार होता है।

या ते रुद्र शिवा तनू रघोरा पाप काशिनी।
तया नस्तन्वाशन्त मयागिरिशन्ताभिचाकशीहि॥

हे गिरिशन्त, कैलाश पर्वत में यद्वा वेदवाणी में स्थित होकर मनुष्यों को सुख देने वाले रुद्र तुम्हारा (शिवा) कल्याण देने वाला (अघोरा) मंगलरूप (अपाप काशिनी) पुण्यफल देने वाला (तनूः) शरीर है (तया शान्तमया तन्वा) उस शान्त मय शरीर से (नः अभिचाकशीहि) हमें देखिये। इस मन्त्र से रुद्र शरीर सिद्ध है या नहीं? केवल यही मन्त्र नहीं वरन् सारा अध्याय रुद्र का वर्णन कर रहा है।

१ स्वामी दयानन्द कृत भाष्य पर आक्षेप—स्वामीजी ने इस मन्त्र में गिरिशन्त पद का अर्थ मेघ किया है। ऊपर तो कहा कि इस अध्याय में राजधर्म वर्णित है और करने लगे मेघ का वर्णन।

२ पक्ष में इसका अर्थ "सत्य उपदेश से सुख पहुँचाने वाले किया, मालूम नहीं यह अर्थ किन पदोंका है?

३ गिरिशन्त का अर्थ सत्यो पदेश से सुख पहुंचाने वाला त्रिकाल में भी नहीं हो सकता। गिरिषु गिरौवा शेते इति गिरिशन्तः ऐसा व्याकरण से बनता है। जिसका अर्थ है गिरि या गिरियों में जो सोता है।

४ स्वामीजी ने रुद्र शब्द को विद्वान का विशेषण लिखा है पर मन्त्र में वह शब्द नहीं। मन्त्र में मौजूद न होते हुये भी होना पड़ा।

५ अभिचाकशीति का अर्थ सब ओर से शिक्षा दीजिये, मन माना और कल्पित है। इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है।

६ प्रथम स मुल्लास में रुद्र का अर्थ ईश्वर किया गया है परन्तु वेद में रुद्र का अर्थ ईश्वर भिन्न सेनापति आदि करके रुद्र शब्द की चरितार्थता ब्रह्म से हटा दी है।

७ महीधरादिने रुद्रका अर्थ इस अध्याय में ईश्वर किया है स्वामी जी ने सबके विरुद्ध १॥ चावल की खिचड़ी अलग पकाई है।

८ पं० शिवशंकर ने रुद्र नाम विजली का लिखा है। जो स्वामी जी के लेख के विरुद्ध है।

९ इस अध्याय में रुद्र के कवच और धनुष को नमस्कार किया गया है यदि तुम किसी के धनुष को नमस्ते करते हो मूर्ति पूजक हो जाओगे।

१० उपनिषद् चिल्लाकर कह रहे हैं कि रुद्र नाम ईश्वर का है स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रः स शिवः

समीक्षा—स्वामी दयानन्द ने तथा पण्डित शिवशंकर ने उक्त मन्त्र के जो अर्थ किये हैं वे दोनों ठीक हैं। एक मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं जैसा कि मैंने पूर्व महीधर और शंकर के भाष्यों पर से एक मन्त्र के दो दो और तीन तीन अर्थ करने का प्रमाण दिया है। वे दोनों अर्थ कैसे ठीक हैं इसका प्रति पादन करना हमारा कर्त्तव्य है। आपने अपनी दशवीं शंका में उपनिषद् का मन्त्र देकर यह जोर दिया है कि रुद्र परमात्मा

ही का नाम है। बस आप को यहीं पर भ्रम हुआ है। यदि आप निरुक्त का स्वाध्याय किये होते एक नहीं, दो नहीं किन्तु सहस्रों रुद्रों का वर्णन वेद में देखे होते तो आप को यह कहने का साहस कभी न होता कि रुद्र केवल परमात्मा का नाम है दूसरे का नहीं। पण्डित शिवशंकर शर्मा ने जो रुद्र का अर्थ अग्नि वा विद्युत किया है, आप ने उस पर दोष क्यों नहीं दिया? इसका कारण यही है कि उन्होंने अर्थ करने में निरुक्त आदिका प्रमाण दिया है। आप क्या कोई सनातन धर्मी उस पर कलम उठाही नहीं सकता। स्वामीजी ने जो अर्थ किया है उसमें उन्होंने रुद्रका अर्थ लिख दिया, परन्तु उसका स्पष्टी करण नहीं किया, इसी से आपको आक्षेप करने का साहस हुआ परन्तु स्वामी जी का अर्थ स प्रमाण है उसमें गलती नहीं है। स्वामीजी के पक्ष के समर्थन में मैं सायण महीधर तथा निरुक्त से ही प्रमाण दूंगा। पहले स्वामी का अर्थ देखिये।

हे (गिरिशन्त) मेघवा सत्योपदेश से सुख देने वाले (रुद्र) दुष्टों को भय और श्रेष्ठों के लिये सुखकारी शिक्षक विद्वान् (याते) जो आपकी (अघोरा) घोर उपद्रव से रहित (अपाप काशिनी) सत्यधर्म को प्रकाशित करने वाली (शिवा) कल्याण कारिणी (तनूः) देहवा विस्तृत उपदेश रूप नीति है (तया) उस (शान्तमया) अत्यन्त सुख प्राप्त कराने वाली (तन्वा) देहवा विस्तृत उपदेश की नीति से (नः) हम लोगों

को आप (अभिचाकशीहि) सब ओर से शीघ्र शिक्षा दीजिये।

भाष्य का स्पष्टी करण—गिरि=मेघ, वेदवाणी, पर्वत ये तीन अर्थ तो आपने भी गिरिशब्दके किये हैं। महीधर ने भी किया है। गिरिणा वेदवाण्या, सत्योपदेशेन शं सुखं तनोति ददातीति गिरिशन्तः। सत्योपदेश से जो सुख देता है उसे गिरिशन्त कहते हैं। वेदवाणी का उपदेश सत्य ही होता है असत्य नहीं अतः स्वामी जी का अर्थ तो आपके पदार्थ से ही युक्तियुक्त है, आप को न सूझे तो दोष किसका?

रुद्र—रुत् ज्ञानं राति ददाति इति रुद्रः ज्ञानप्रदः॥ यजु० १६।१ महीधरः॥

रुत् अर्थात् ज्ञान को जो देता है उसका नाम रुद्र होता है। इस व्युत्पत्ति से रुद्र का अर्थ ज्ञान दाता हुआ। ज्ञान देने वाला विद्वान ही होता है इसलिये स्वामी जी ने रुद्र का अर्थ शिक्षा देनेवाला विद्वाने किया है, वह तो महीधर की व्युत्पत्ति के अनुसार भी ठीक है।

दुष्टों के लिये भयकारी।

रोदयन्ति शत्रून् इति रुद्राः सायणः ऋ० १।३।२।२
रोदयतीति रुद्रः॥ निरुक्त दैवत काण्ड १०।१।५।

रुलाने वाले को रुद्र कहते हैं ऐसा निरुक्त कहता है।

सायण ने इसकी निरुक्ति में शत्रून् का अध्याहार किया है। अर्थात् शत्रुओं को रुलाने वाले को कहते हैं।

जब किसी को शत्रु शब्द के अध्याहार करने का अधिकार है तो दूसरे को दुष्ट आदि शब्दों के अध्याहार का भी अधिकार है। इसलिये स्वामी जी ने दुष्ट शब्द का अध्याहार किया है जो दुष्टों को रुलाता है वही उनके लिये भयकारी भी है यह निर्विवाद है। इसलिये स्वामीजी का उक्त अर्थ ठीक है। रुत् दुःखं ददातीति रुद्रः दुःख देने वाले का नाम भी रुद्र है। रुत्=दुःख। महीधर यजु० १६-१॥ जो दुख देने वाला होता है वही भयकारी होता है।

रुद्र के अनेक अर्थ होते हैं इसलिये जहां रुद्र शब्द का जैसा उचित अर्थ होगा, वहां वैसा ही किया जायगा। स्वामी जी ने वैसा ही किया है। स्वामीजी ने यजुर्वेद अ० १६ मन्त्र १५, १६ में रुद्र का अर्थ ईश्वर ही किया है, ऐसे ही अन्य स्थलों पर देखने से और भी प्रमाण मिल जावेंगे फिर आप का यह लिखना कि स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में तो रुद्र का अर्थ ईश्वर किया परन्तु वेद में कहीं पर नहीं, यह आप का अज्ञान या आप की द्वेष बुद्धि नहीं तो क्या है? यजुर्वेद अध्याय १६ में अनेक प्रकार के रुद्रों का वर्णन है। इसलिये भिन्न भिन्न स्थानों पर रुद्र के भिन्न अर्थ स्वामी जी ने किये हैं।

आप यदि सायण महीधर के भाष्यों का स्वाध्याय किये

होते तो आप को यह लिखने का साहस कदापि न होता कि सायण और महीधर ने सर्वत्र रुद्र का अर्थ ईश्वर किया है। देखो यजुर्वेद अ० १६।६२।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।

श्री सायणाचार्य—ये रुद्रा अन्नेषु भुज्यमानेषु स्थिताः सन्तो जनान् विविध्यन्ति विशेषेण ताडयन्ति। धातु वैषम्यं कृत्वा रोगान् उत्पादयन्ति इत्यर्थः। तथा पात्रेषु पात्रस्थ-क्षीरोदकादिषु स्थिताः सन्तः क्षीरादिपात्रं कुर्वतो जनान् विविध्यन्ति अन्नोदकभोक्तारो व्याधिभिः पीडनीया इति भावः॥ काण्वयजु० १७।७।१६। ऐसा ही अर्थ महीधर ने भी किया है?

उक्त संस्कृत भाष्य का भावार्थ यह है:—ये रुद्र अन्न और पानी में प्रविष्ट हो कर उस अन्न को खाने वाले और उस पानी को पीने वाले लोगों में रोग उत्पन्न करते हैं।

रोग उत्पन्न करना रुद्रों का कर्म है। यहां रुद्र से रोग जन्तुओं का स्पष्ट ग्रहण है। खाने और पीने के पदार्थों में रोगोत्पादक कीटाणु प्रविष्ट होकर खाने पीने वालों का प्राण ले लेते हैं।

रोग जन्तु अन्नादि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होकर शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। यही भाव उक्त मंत्र का है।

(स) पण्डित शिवशंकर का अर्थ स्वामीजी के अनुकूल

नहीं तो क्या इससे अर्थ अमाननीय हो जायगा। इस प्रकार के आक्षेपों के उत्तर पूर्व के अर्थ करने में दिये जाचुके हैं। पाठक वहीं देखें। पिष्ट पेषण अनुचित है।

पण्डित शिवशंकरजी ने रुद्र नाम बिजली का लिखा है सो सोलहो आना सत्य है। बिजली का नाम भी रुद्र है। आप स्वाध्याय तो करें नहीं, कोरे पुराणपाठी बने रहें, और अपनी मूर्खता का दोष दूसरों पर लादें, यही तो कलियुगी पण्डितों का पाखण्ड है। और इसी लिये देवी भागवत ने ऐसे पाखण्डी ब्राह्मणों को राक्षस वेदविरोधी, आदि शब्दों से याद किया है। सुनिये।

अरोदी दन्तरिक्षेयद्र विद्युदृष्टिं ददन्नृणाम्।
चतुर्भि र्ऋषिभिस्तेन रुद्र इत्यभिधीयते॥

बृहद्देवता।

मनुष्यों को जल देती हुई अन्तरिक्ष में जो बिजली कड़कती है उसी विद्युत को चारों ऋषियों ने रुद्र कहा है अग्निरपि रुद्र उच्यते नि० १०।७।२

अग्नि का नाम भी रुद्र है।

कहिये अब भी आंख खुली या नहीं?

(६) कालूरामजी, हम तो पूरे मूर्ति पूजक हैं। भला जो माता पिता आचार्य्य गुरुजनों की सेवा करता है वह मूर्ति पूजक की सूची से अलग थोड़े ही हो सकता है। रुद्राध्याय में जो धनुष बाण शब्द आये हैं वे वास्तविक धनुषबाण नहीं,

किन्तु आलंकारिक हैं। इसी प्रकार मंत्र में तन शब्द आया है जिसे देखकर आप रुद्र को शरीर मान बैठे। इसलिये इसका समाधान यहां पर कर देना आवश्यक है।

वेदों में इस प्रकार के मुख शरीर हृदय जिह्वा का आलंकारिक वर्णन बहुत है जिसे देखकर हमारे आर्य समाजी भाई भी, जिन्होंने गंभीरता पूर्वक स्वाध्याय नहीं किया है और न स्वाध्याय के लिये प्रयत्नशील हैं, शंका ग्रस्त हो जाते हैं और अर्थ का अनर्थ करने के लिये व्यर्थ ही अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं।

अग्ने रनीकमप आविवेश अपांनपात्प्रतिरक्षन्नसुर्यम्।

दमे दमे समिधंयक्ष्यग्ने प्रति ते जिह्वा घृतमुच्चरण्यत्स्वाहा॥

इस मन्त्र में अग्नि के मुख और जिह्वा का वर्णन है। क्या सचमुच में हमारे मुख और जिह्वा के समान अग्निको मुख और जिह्वा है ? यजु० ८।२४

(२) समुद्रोते हृदय मप्स्वन्तः संत्वा विशन्त्वोषधीरुतापः

इस मन्त्र में महीधर ने सोम को हृदय माना है। यथा हे सोम यत्ते हृदयं इत्यादि। हे सोम जो तुम्हारा हृदय समुद्र समान बहुत जल में है इत्यादि। क्या अस्मदादिवत् सोम-महौषधि को हृदय होता है ? नहीं, कूटे हुये सोम की सिट्टी को यहां हृदय शब्द से व्यवहृत किया है।

ततः खनेम सुप्रतीक मग्निम् यजु० ११-२२। इसमें भी अग्नि के मुख का वर्णन है।

चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्यपादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो यस्य। त्रिधाबद्धो वृषभोरोर वीति महो देवो मर्त्यांमा विवेश।

यहां पर यज्ञ के वा धर्म के चारसींग तीन पैर दो सिर सात हाथ का वर्णन है। क्या यज्ञ वा धर्म को अस्मदादिवत् हाथ पैर होते हैं? नहीं,

यत्र श्यामो लोहिताक्षोदण्डश्चरति पापहा।
प्रजा स्तत्रन मुह्यन्ति नेताचेत्साधुपश्यति॥

मनुस्मृति

जहां पर लाल नेत्रवाला श्याम वर्ण का पाप नाशक दण्ड जारी रहता है वहां की प्रजायें मोह को प्राप्त नहीं होतीं। क्या दण्ड को कोई नेत्र होता है? इसी प्रकार वाराह पुराण अ० २६ में दिशाओं को ब्रह्मासे उत्पन्न लिखकर उनका दिग्पालों से विवाह कराया गया है। ब्रह्माने सोचाकि यदि मैं सृष्टि पैदा करूंगा तो रहेगी कहां ऐसा सोच कर कानसे दश कन्यायें पैदा कीं। उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम ईशान नैऋत्य वायव्य आग्नेय कोण ऊर्ध्व दिग् और अधोदिग्। इसके बाद को दिग्पालों को उत्पन्न करके उनसे इनका विवाह करा दिया।

यह कथा क्या वास्तविक है? नहीं, यह कथा आलंकारिक है। इसी प्रकार इसी पुराण के अध्याय ३१में धर्म की भी उत्पत्ति लिखी है।

तस्य चिन्तयतस्त्वंगाद् दक्षिणाच्छ्वेत कुण्डलः।
प्रादुर्बभूव पुरुषः श्वेतमाल्यानुलेपनः॥
तं दृष्ट्वोवाच भगवान् चतुष्पादं वृषा कृतिम्॥
पालयेमाः प्रजाः साधो त्वं ज्येष्ठो जगतो भव॥
इत्युक्तः समवस्थोसौ चतुष्पा स्स्यात्कृते युगे॥
त्रेतायां त्रिपदश्चासौ द्विपदो द्वापरेऽभवत्॥
कलावेकेन पादेन प्रजाः पालयते प्रभुः॥
त्रिश्रृंगो सौ स्मृतो वेदे ससंहित पदक्रमः।
तथा आद्यन्त ओंकारो द्विशिराः सप्त हस्तवान्॥
उदात्तादि त्रिभिर्बद्धः एवं धर्मो व्यव स्थितः॥

अर्थ-इस प्रकार चिन्तन करते हुये ब्रह्माके दहिने अंगसे श्वेत कुण्डल धारण किये हुये, एक पुरुष पैदा हुआ जिसके चार पैर थे और जो वैलके आकार का था। भगवान् ने कहा कि तुम ज्येष्ठ हो, तुम इस प्रजा का पालन करो वह धर्म सत्ययुग में ४ पैर से, त्रेता में तीन पैर से 'द्वापर में दो पैर से तथा कलि में एक पैर से स्थित रहता है। वेद में उसे तीन सींग दो शिर और सात हाथ बतलाये गये हैं।

अब पाठक विचार करें कि धर्म का यह आलंकारिक वर्णन्, क्या सत्यतः वैलके 'समान चार पैर वाला है। और एक एक युग में एक एक पैर टूटता जाता है?

जिस प्रकार दिशा, धर्म, यज्ञ दण्ड आदि निराकार पदार्थों में अक्ष बाहु, विग्राह नेत्र आदि का आलंकारिक वर्णन है

उसी प्रकार निराकार परमात्मा को भी हस्त आदि अवयवों का वर्णन आलंकारिक है वास्तविक नहीं।

वेदान्त दर्शन अ० ३ पाद २ सूत्र ११में ईश्वर के शरीर का निषेध और उसके निराकारत्वका प्रतिपादन भली भांति किया गया है।

इसलिये रुद्र के अवयवों का वर्णन होनेसे रुद्रकी साकारता का स्वप्न देखना सिवाय अज्ञानता के और क्या कहा जा सकता है? क्योंकि अवयवों की कल्पना केवल आलंकारिक है वास्तविक नहीं। सब अवयवों की शक्ति उसमें विद्यमान होने के कारण उसमें अवयवों का अध्यारोप किया गया है।

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्र पात्॥

यजु० ३१-१

इस मन्त्र में परमात्मा का वर्णन हजारों मुख पैर आंख आदि अवयवों से युक्त किया गया है। इससे यदि दस हजार मुख हजार पैर हजार आंख वाला कोई अज्ञानी पुरुष कहे तो सिवाय उसकी अज्ञानता के और क्या कहा जा सकता है। क्या ऐसी मूर्ति किसी मन्दिर में बना कर रखी गई है?

सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोक्षिशिरो मुखम्।

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वं मावृत्य तिष्ठति॥

जो सर्व व्यापक आत्मा है उसके हाथ पांव नेत्र शिर मुख और कान सर्वत्र है इस वचन से जैसे परमात्मा साकार नहीं

माना जा सकता उसी प्रकार वेद में रुद्र का वर्णन अवयवों के साथ होने से रुद्र की साकारता सिद्ध नहीं हो सकती। क्योंकि अवयवों की कल्पना वहां आलंकारिक है। अवयवों की शक्ति उसके पास है वह शक्ति सर्वत्र है उतनाही भाव उक्त वर्णन का है।

रुद्र के धनुष बाण और शस्त्रास्त्रों का वर्णन। जब कि अवयवों का वर्णन आलंकारिक है तो शास्त्रास्त्रों का वर्णन भी आलंकारिक ही होना चाहिये। इसकी सिद्धि की आवश्यकता नहीं, तथापि शस्त्रों के आलंकारिक वर्णन होने के विषय में यहां थोड़ा सा प्रकाश डालना अवश्यक है।

(१) नमोस्तु रुद्रेभ्यः ये पृथिव्या येषामन्न मिषवः। यजु० १६।६६

(२) नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां वात इषवः॥ यजु० १६।६५

(३) नमोस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्ष मिषवः॥ यजु० १६।६४

(४) आदित्याः इषवः॥ अथर्व ३।२७।५

(५) पितर इषवः॥ अथर्व ३।२७।२

(६) अन्न मिषवः॥ अथर्व ३।२७।३

(७) अशनि रिषवः॥ अथर्व ३।२७।४

(८) विरुध इषवः॥ अथर्व ३।२७।५

(९) वर्ष मिषवः॥ अथर्व ३।२७।६

(१०) तेषां वो अग्निरिषवः ॥ अथर्व ३।२६।१

(११) तेषां वः काम इषवः ॥ अथर्व ३।२६।२

(१२) तेषां वः आप इषवः ॥ अथर्व ३।२६।३

(१३) तेषां वः वात इषवः ॥ अथर्व ३।२६।४

(१४) तेषाँ वः ओषधि रिषवः अथर्व ३।२६।५

(१५) तेषां वो बृहस्पति रिषवः ॥ अथर्व ३।२६।२६

इस मन्त्रों में अन्न वायु वृष्टि आदित्य पितर विद्युत् वनस्पति ओषधि अग्नि काम जल बृहस्पति ये बाण हैं ऐसा कहा गया है। अब कोई यह सिद्ध नहीं कर सकता कि ये वास्तविक बाण हैं जो धनुष के द्वारा शत्रु पर फेंके जा सकते हैं। जैसे ये बाण आलंकारिक हैं वैसे धनुष भी आलंकारिक ही होना चाहिये कि जिस धनुष पर से ये बाण फेंके जाते हैं बाण रखने का तरकस भी काल्पनिक ही होना चाहिये। अर्थात् अवयव, धनुष, बाण तरकस आदि सब ही शब्द काव्यमय अलंकार रूप में यहां प्रयुक्त किये गये हैं।

वेद में वास्तविक धनुष बाण का भी वर्णन है। परन्तु यहां पर इतना ही बतलाना है कि रुद्र देवता के शस्त्रों का वर्णन वास्तविक शास्त्रों का नहीं है किन्तु आलंकारिक शक्तियों का है। रुद्र के बाण अन्न वायु और जल हैं। ऐसा उक्त मन्त्रों में कहा कहा है। यदि रुद्र शब्द से सावयव देवता के वर्णन का तात्पर्य्य होता तो बाणों का रूप बनाने का कोई प्रयोजन नहीं था।

(१०) यह ठीक है कि रुद्र शब्द का अर्थ परमात्मा भी है जैसा कि आप ने उपनिषद् के प्रमाण से दिखलाया है। परन्तु सर्वत्र यही अर्थ नहीं लग सकता परमात्मा एक है। पर जहां हज़ार हों रुद्र का वर्णन वेद में आया है, वहां क्या हज़ार ही परमात्मा मानियेगा ?

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ॥ यजु० १६।५४ यहां हज़ार हों रुद्रों का वर्णन है।

ऋग्वेद ५।६०।५० में सब रुद्रों को भाई बतलाया गया है।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः

अर्थ—(अज्येष्ठासः) जिनमें कोई बड़ा नहीं है (अकनिष्ठासः) जिनमें कोई छोटा नहीं है ऐसे (एते) ये सब (भ्रातरः) भाई एक जैसे हैं। ये सब (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य के लिये (संवावृधुः) मिलकर उन्नति करते हैं इन सबका युवा पिता (स्वपारुद्रः) उत्तम कर्म करने वाला रुद्र है। (एषां) इनके लिये (सुदुघा) उत्तम प्रकार का दूध देने वाली माता (पृश्निः) नाना रूपवाली प्रकृति है। यह माता (मरुद्भ्यः) न रोने वाले जीवों के लिये (सुदिना) उत्तम दिन प्रदान करती है।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जीवों का नाम भी रुद्र है। इनका पिता युवा पिता रुद्र कहा गया है। माता प्रकृति

बतलाई ग है। अब आप ही बतलाइये, आपकी बात मानें या वेद की ?

आपके आचार्यों की सम्मति भी यहां दिखला दी जाती है। यद्यपि उक्त प्रमाण ही पर्याप्त हैं परन्तु जनता के लाभ के लिये थोड़ा बतला देना मैं उचित समझता हूं।

ऋग्वेदपर सायण भाष्य

(१) रुद्रेषु स्तोतृकारिषु १०।६४।८

(२) रुत् दुःखं तद्धेतु भूतं पापं वा तस्य द्रावयितारौ रुद्रौ संग्रामे भयंकरं शब्द यन्तौ वा।

(३) रोदयन्ति शत्रून् इति रुद्राः। ३।३२।३

(४) रुद्राणां......प्राण रूपेण वर्त्तमानानां मरुताम्। यद्वा रोद यितृणां प्राणानाम्। प्राणाहि शरीरान्निर्गताः सन्तः बंधुजनान् रोदयन्ति १।१०१।७

उव्वट

रुद्रैः स्तोतृभिः॥ यजु० ३८।१६

रुद्रैः धीरैः॥ यजु ११।५५

श्री महीधराचार्य्य जी का रुद्र विषयकमत।

(१) रुत् दुःखं द्रावयतीति रुद्रः रवण रुत् ज्ञानं राति ददाति यजु० १६।१

(२) रुद्रो दुःख नाशकः॥ यजु० १६।३८

(३) रोदयति विरोधिनां शत्रं इति रुद्रः॥ ३।५७

(४) रुद्रैः धीरैः बुद्धिमद्भिः॥ यजु० ११।५५

(५)रुद्रैः स्तोतृभिः ॥ यजु० ३८।१६

इन पूर्वाचार्य्यों के मत में भी रुद्र केवल परमात्मा का नाम नहीं किन्तु स्तोता, बुद्धिमान् वीर, विद्वान प्राण आदि का नाम भी रुद्र है।

पण्डित जी के दिमाग की दशाके लिये इतना ही पर्याप्त है। यद्यपि हमारे पास रुद्र के विषय में अनेक नोट हैं। परन्तु यहां पर सब देना व्यर्थ है।

रामावतार।

जिस प्रकार पण्डितजीने पूर्व में चालबाजियां खेली हैं जिनका भण्डा फोड़ पूर्ण रीतिसे किया गया है, वैसी ही चालाकी धूर्तता आपने यहां पर की है। आपने मंत्र देकर उनसे राम सीता दशरथ रावण की सत्ता वेदमें दिखलाने का प्रयत्न किया है। इससे बढकर हास्यजनक बात क्या होगी? आपका यह अर्थ नहीं है। आपने पं० ज्वाला प्रसादजी के अर्थ को लिया है, परन्तु कुछ ओर जोड़ दिया है। पण्डित तुलसी राम जी ने इसका जबाव दिया है। उसकी समालोचना में आप लिखते हैं कि यदि सायणाचार्य्य का अर्थ लोगे तो तुम्हें मूर्तिपूजा माननी पडेगी। क्यों? सायण भाष्य देने का यह अभिप्राय नहीं है कि उनकी सबही बातें मान ली जावें। किन्तु उनका भाष्य देनेका अभिप्राय यह है कि सनातन धर्म

के पूर्वा चार्यो ने भी इस मंत्र पर से राम सीता का अलल टप्पू अर्थ नहीं किया है। मंत्र यह है

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वासारं जारो अभ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि र्वितिष्ठन्रुशद्भि र्वर्णै रभि राममस्थात्॥

(भद्रः) रामचन्द्र जी (भद्रया) सीता सहित (सचमानः) लज्जित होकर (आगात्) दण्ड कारण्य को गये तब (स्वसारं) सीता के हाथ पकड़ने को (जारः) रावण (पश्चात्) राम के परोक्ष में (अभ्येति) आया तब रावण के मरने के पीछे (सुप्रकेतैः) अच्छे चिन्हों से (उषद्भिः) दीप्ति मान् (वर्णैः) वर्णों से उपलक्षित (द्युभिः) द्युलोक की साधन भूत राम की दारा सहित (अग्निः) अग्नि देवता (रामं) राम के संमुख (अभ्यस्थात्) उपस्थित होता है। जानकी शुद्ध है यह कर जानकी को समर्पण करता है। इससे रामावतार सिद्ध है।

पण्डित ज्वाला प्रसाद का अर्थ।

(यदा) (भद्रः) भजनीयः श्रीरामः (भद्रया) भजनीयया श्री सीतया (सचमानः) सहितः (आगात्) आगच्छति देहे प्रादुर्भवति तदा (जारः) रावणः (स्वसारं) ऋषीणां रुधिरेणोत्पन्नत्वात् भगिनी तुल्या सीतां (अभ्येति) अभिगच्छति। पश्चात् अन्त काले (अग्निः) क्रोधेन प्रज्वलितः रावणः (अभितिष्ठन्) युद्धे राम संमुखे तिष्ठन् सन् (सुप्रकेतैः)

सुप्रज्ञानैः (उशद्भिः श्वेतैः (वर्णैः) द्युतिभिः कुंभकर्णादीनां जीवात्मभिः सह (रामं) श्रीरामरूपं विष्णुं (अस्थात्) विष्णोः समीप्यतां प्राप्तवान् ॥

जब श्री रामचन्द्र श्री सीता के साथ देह में प्रादुर्भूत होते हैं तब रावण ऋषियों को खून से उत्पन्न होने के कारण भगिनी के तुल्य सीता के पास जाती है। अन्तकाल में रावण युद्ध में श्री राम के सामने खड़ा होकर अत्यंत ज्ञान वाले श्वेत वर्णन वाले कुंभ कर्णादि के जीवात्मा के साथ श्रीराम रूप विष्णु की समीपताको प्राप्त किया।

समीक्षा—पं० कालूराम पं० ज्वाला प्रसाद के अर्थों में कितना भेद है पाठक पढ़कर स्वयं देखलें। दोनों ने विना प्रमाण अपने अपने मनकी खिचड़ी पकाई है। भद्रका अर्थ राम भद्रा का अर्थ सीता स्वड़ा का अर्थ सीता, जार का अर्थ रावण किस कोष या व्याकरण के प्रमाण से किया गया है? कोष भी जाने दीजिये, क्या आपके पूर्वाचार्य्यों में किसी भीआचार्य्य ने भद्रादि का अर्थ रामादि किया है? यदि नहीं तो आपकी यह कपोलकल्पना कैसे मान ली जाय? द्युभिः यह दिव का तृतीया बहु वचन है। इसका अर्थ कालूराम जी रामकी द्वारा करते हैं और पं० ज्वाला प्रसाद कुम्भ कर्णादिका जीवात्मा करते हैं।

इस अर्थ में न तो किसी कोषका प्रमाण है न किसी आचार्य्य का। ऐसी दशा में आपका उक्त अर्थ किस आधार

से माना जायगा। अग्नि का अर्थ रावण किस व्युत्पत्ति से होगा? आपके किसी भी आचार्य ने वैदिक साहित्य में कहीं पर भी इसका अर्थ ऐसा किया है? यदि नहीं तो विना प्रमाण उक्त अर्थ कौन मानेगा?

एक मन्त्र के कई अर्थ हो सकते हैं, परन्तु उन अर्थों के लिये प्रमाण की आवश्यकता है। हम सहर्ष आपके अर्थ को मानने के लिये तैयार हैं यदि आप मन्त्र का अर्थ जाने दीजिये, उक्त शब्दों का अर्थ किसी कोष, व्याकरण निरुक्त से प्रमाणित करें यदि कोष व्याकरण न हो, तो किसी आचार्य्य का ही प्रमाण दे दें। आप के मनमानी अर्थ से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वाचार्य्य इस मन्त्र को अवतारवाद परक नहीं मानते थे अतः सनातनधर्म का सिद्धान्त उन्हीं का अर्थ हो सकता है आप का नहीं।

अब आप के अर्थों की असत्यता वेद के ही प्रमाण से देता हूं जिससे आप लोगों के पाखण्ड का भण्डा फोड़ हो! और फिर कभी आगे इस मन्त्र के अर्थ में जनता को आप लोग धोखा न दे सकें। देखिये जार और स्वसृ शब्द का साहचार्य्य में क्या अर्थ होता है।

अथापि उपमार्थे दृश्यते जार आ भगम्। जार इव भगम्। आदित्योऽत्र जार उच्यते। रात्रेर्जरयिता। स एव भासाम्॥

यहां आकार" उपमा के अर्थ में भी देखा जाता है। जैसे

"जार आ भगम्" इस मन्त्र में आ का अर्थ समान है। जार कौन है सो कहते हैं कि इस मन्त्र में जार नाम आदित्य का है। क्यों ? उसके उदय होने पर रात्रि नाश हो जाती है। वही चन्द्रादिकों के प्रकाश को भी नाश कर देता है। नि० ३।१६

पुनश्च इसी के आगे जार शब्दके साथ स्वसृ ※ शब्द भी पढ़ा है। स्वसृ का अर्थ ऊषा किया गया है। वेद में जहां स्वसृ और जार शब्द आये हैं वहां पर उनका अर्थ ऊषा और सूर्य ही किया गया है।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतुनः।
भ्रातेन्द्रस्य सखा मम (ऋ०सं०४,८,२१,५)

निरुक्त ३।१६

इस मन्त्र में "स्वसुर्जारः" यह पद आया है जिसका अर्थ निरुक्त ने यह किया है कि उषा को जीर्ण करने वाला सूर्य। अर्थात् स्वसृ का अर्थ उषा और जार का अर्थ सूर्य किया

※ यही ऊषा कहीं पर सूर्य की पत्नी कही गई है। नि० १२।८। उषा सूर्य की भगिनी तथा स्त्री दोनों कही गई है। जैसे भाई बहन एक साथ रहते हैं इसलिये साहचर्य्यात् से सूर्य की भगिनी उषा मानी गई है और इसी प्रकार साहचर्य्य से ऊषा को सूर्य पत्नी कहा गया है। मनुष्यवत् भगिनी और पत्नी का अभिप्राय यहां नहीं है। इसी प्रकार सरस्वती ब्रह्मा की स्त्री, ब्रह्मा की कन्या कही गई है।

है। जहां पर स्वसृ का साहचार्य्य जार के साथ में आया है वहां पर वेद में यही अर्थ आचार्य्यों ने किया है। रावण और सीता नहीं किया है।

भद्रो भद्रया इस मन्त्र में भी "स्वसार जारो" यही दो पद आये हैं फिर इसका भिन्न अर्थ कैसे करियेगा?

इस लिये सायणाचार्य्य ने जो इस मन्त्र का अर्थ किया है, वही वेदानुकूल है। अब मंत्र का अर्थ सुनिये।

इस मन्त्र का देवता अग्नि है। इस लिये इस मन्त्र में अग्नि या सूर्य का ही वर्णन होना माना जा सकता है क्योंकि या तेनोच्यते सा देवता जिसका मन्त्र में वर्णन हो वही उस मंत्र का देवता होता है।

(भद्रः) कल्याणकारी सूर्य (भद्रया) कल्याण कारिणी ऊषा से (सचमानः) सेवमान (आगात् आगच्छति) आता है अर्थात् उदय होता है। तत् पश्चात् (जारः) सूर्य (स्वसारं) उषा को (अभ्येति सर्वतः व्याप्नोति) सब ओर से व्याप्त कर लेता है। (सुप्रकेतैः सुप्रज्ञानैः) अच्छे प्रकार से ज्ञान देने वाले (द्युभिः दीप्तिभिः) प्रकाश से (वितिष्ठन् सर्वतः वर्तमानः) सब ओर वर्तमान अर्थात् व्याप्त होकर (अग्नि) वह सूर्य (उशद्भिः) श्वेत (वर्णैः) तेज से (रामं-कृष्णं शार्वरंतमः) रात्रि के अन्धकार को (अभ्यस्थात् अभिभूय तिष्ठति) नाश कर देता है।

आगे कालूराम जी लिखते हैं कि स्वामीजी ने राम ब्रह्म

का नाम माना है। इस मन्त्र में वह ब्रह्म का नाम कहां उड़ गया। यह भी कालूराम की अज्ञानता का द्योतक है मुझे जहां तक मालूम है, स्वामी जी ने राम का अर्थ ब्रह्म कहीं नहीं किया है। पर शायद कहीं हो इसलिये उसका समाधान भी कर दिया जाता है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं और वे भिन्न भिन्न स्थलों में भिन्न भिन्न अर्थ के द्योतक होते हैं सवत्र एक ही अर्थ प्रयुक्त नहीं होता। प्रकरण के अनुकूल शब्द का अर्थ लगता है। सैन्धव शब्द नोमक और घोड़ा इन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है। आप ही सरीखे कोई आदमी भोजन बनाते समय सैन्धव मागने पर घोड़ा यदि लाकर खड़ा कर दे तो उसे कौन बुद्धिमान कहेगा ? कारण कि वहां सैन्धव से अश्व अभिप्रेत नहीं किन्तु नोमक से तात्पर्य्य है। इसी प्रकार यहां राम शब्द का अर्थ ब्रह्म प्रकरणविरुद्ध होने से राम का अर्थ अन्धकार ही हो सकता है। आप के पूर्वाचार्य्यों ने भी ऐसा ही अर्थ किया है।

स्वामी दयानन्द आप सरीखे अन्धे न थे जो वाल्मीकि रामायण को ईश्वर कृत लिख देंगे। इतना झूठ लिखते आप को शरम भी न मालूम हुई। कम से कम पता तो देना चाहिये कि स्वामीजी ने अमुक स्थान पर वाल्मीकि रामयण को ईश्वरकृत माना है इस प्रकार असत्य लेख से जनता को धोखा देना किसी पण्डित का काम नहीं।

स्वामी जी ने यजुर्वेद सोलहवें अध्याय में रुद्र का जो भिन्न २ अर्थ किया है वह सब ठीक है। पीछे रुद्र के अनेकार्थ दिखला दिये गये हैं। इसलिये जब तक उसकी आप समालोचना नहीं करते तब तक उस पर कलम उठाना व्यर्थ है।

दशरथ

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रास्याग्रे श्रेणी नयन्ति।

अर्थ—राजा दशरथ के यज्ञ में लालवर्ण के चार सौ घोड़े सहस्रों अश्वों से चलने वाले रथ के आगे चलते थे।

समीक्षा—देवी भागवत ने ठीक ही लिखा है:—

ये पूर्वं राक्षसा राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः।
पाखण्डनिरताः प्रायो भवन्ति जनवञ्चकाः।
असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः।
वेदनिन्दा कराः क्रूराः धर्मभ्रष्टातिवावदुकाः॥

अर्थ—पूर्व काल में जो राक्षस थे कलि में वे ही ब्राह्मण हैं। ये पाखण्ड में संलग्न, जनता को ठगने वाले, असत्यवादी वेदधर्म रहित, वेदनिन्दा करनेवाले धर्म भ्रष्ट तथा वावदूक होते हैं।

भागवत का उक्त कथन पं० कालूराम शास्त्री पर कैसा सटीक घटता है। इनके सरीखे पाखण्डी इस भारत वर्ष भर

में शायद ही कोई मिलेगा। इन्हें दशरथ शब्द से राजा दश-रथ के ग्रहण करने में लेशमात्र भी लज्जा न आई। क्या इससे वेद की निन्दा नहीं होती? क्या यह मन्त्र राजा दशरथ के जमाने में न था? क्या उस समय यही अर्थ होता था और राजा दशरथ को यही अर्थ पढ़ाया गया था?

इस प्रकार खींचतान कर मन माना अर्थ कर जनता की आंख में धूल झोंकना और जनता को भ्रम में डालना क्या किसी ब्राह्मण का काम है?

अगर अर्थ करने की यही प्रणाली निकल पड़ी तो ईसाई "ईशा वास्य मिदं सर्वं" इस मन्त्र में ईशा शब्द से ईसामसीह का ग्रहण करें तो क्या आश्चर्य है?

इन से पूछना चाहिये कि आप इसमें यज्ञ कहां से लाये? यदि कहो प्रकरण वशात् अध्याहार किया है तो यह कथन भी पाखण्ड ही होगा क्योंकि यहां यज्ञ प्रकरण है नहीं। यह कालूराम जी का नया आविष्कार है।

इससे इतना तो अवश्य हो गया कि मूर्ख चेलों को डूबते का सहारा मिल गया। और नहीं तो, थोड़े पढ़े लिखे संस्कृतानभिज्ञ आर्य्य समाजियों से लड़ने का मौका तो इन चेलों को मिल ही गया। परन्तु अन्धकार का राज्य तभी तक रहता है जब तक सूर्य का प्रकाश नहीं होता। उल्लू का राज्य तभी तक रहता है जब तक कि रश्मिमाली भुवनभास्कर भगवान सूर्य उदय नहीं होते। पाठको में स्वामी दयानन्द

का अर्थ न देकर सायणाचार्य का अर्थ देता हूं ताकि विरोधियों को इनकार करने का मौका न मिले और यह न कहें कि स्वामी दयानन्द के भाष्य से हमें क्या प्रयोजन?

पूरा मन्त्र यह है:—

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः॥

ऋ० मं० १ सूक्त १२६ मन्त्र ४

दशरथस्य दशसंख्याकरथवतः सहस्रस्य, सहस्रसंख्याकानुचरोपेतस्यकक्षीवतो गोयूथसहस्रस्यवाग्रे पुरस्तात् शोणाः शोणवर्णोपेताः अश्वाश्चत्वारिंशत् एकैकस्य रथस्य चतुष्टये सति दशरथानां मिलित्वा चत्वारिंशदश्वा भवन्ति तेपि श्रेणीं पंक्तिमाश्रित्य नयन्ति रथानभिमत देशे प्रापयन्ति। यद्वा। अश्वनियुक्तान् रथान् श्रेणिं श्रेणीभावं नयन्ति प्रापयन्ति। एकैकं रथं चत्वारः चत्वारः पंक्त्याकारेण वहन्तीत्यर्थः। कक्ष्या रज्जु रश्वस्येति यास्केनोक्तत्वात्॥ नि० ३।३ तामिश्रत इवन्तः।

अथवा अंगिरसः पुत्राः सर्वेपि कक्षीवन्तः। अथवा कक्षीवदनुचराः सर्वेपि छत्रिन्यायेन कक्षीवन्तः। पज्राः। घासादि भक्षवन्तः सेन्नः मदच्युतः मदस्राविणः उद्धवृत्तान् शत्रूणां मदस्य च्यावयितृन् वा कृशनावतः सुवर्णमयनानाभरण युक्तान्। कृशनमिति हिरण्यनाम। अत्यान् सतत

गमनशीलानश्वान् उदमृक्षन्त अध्वश्रमजनितस्वेदापनयायोत्कृष्ट मार्जयन्ति ॥ इस मन्त्र का देवता विद्वान् है।

अर्थ—दश सख्याक रथ वाले, सहस्रों अनुचरों से युक्त कक्षीवान् (विद्वान्) के आगे आगे लाल लाल चालीस घोड़े पंक्ति बद्ध होकर रथ को अभिमत स्थान में पहुँचाते हैं। एक एक रथ में ४ चार घोड़े होने से दशरथों में ४० घोड़े होते हैं। अर्थात् एक एक रथ को चार चार घोड़े पंक्तिबद्ध होकर खींचते हैं।

सुवर्ण के अलंकारों से भूषित, शत्रुओं के मद को चूर्ण करने वाले उन घोड़ों को घास आदि से युक्त होकर सईस लोग मार्ग में चलने के कारण उत्पन्न पसीने को दूर करने के लिये अच्छी तरह से मलते हैं (साफ़ करते हैं)

स्पष्टीकरण—कक्षीवन्तः। सायण ने कक्ष्या और कक्षी को समानार्थक माना है। जीन कसने के लिये जो चमड़े की रस्सी होती है उसे कक्ष्या कहते हैं यह जिसके पास रहे वह कक्षीवान् कहलाता है। जैसे गुणवान, धनवान इत्यादि। चूंकि सईस लोग घोड़े के सामान को सुरक्षित रखते हैं इसलिये कक्षीवान् का अर्थ यहां सईस किया गया है।

(२) अंगिरा के पुत्र सब ही कक्षीवान कहलाते हैं। अथवा कक्षीवाले सब ही अनुचर क्षत्रिय न्याय से कक्षीवान कहलाते हैं।

अंगिरा अग्नि का नाम है। तंत्वा समिद्भिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि। यह वेद का प्रमाण है। यहां पर पुत्र शब्द से अस्मदादि वत् पुत्रादि का ग्रहण नहीं है। किन्तु यहां पर पुत्र शब्द लाक्षणिक है। अग्नि के पुत्र वे ही लोग हैं जो अग्नि विद्या में निपुण होकर अग्नि की रक्षा करते हैं। इसलिये कक्षीवान का अर्थ अग्नि विद्या निपुण विद्वान का पर्याय है।

आप कहेंगे कि यह आपका मन माना अर्थ है। मैं कहता हूं कि नहीं। वेद में ऐसे प्रयोग अनेक हैं।

स्वरू को दिवलोक का पुत्र कहा गया है—दिवः सूनुरसि। यजु० ६। ६। द्युलोकाद्धि वर्षति ततो यूपो जायते यूपास्स्वरु रिति प्रणालिकया दिवः सूनुः स्वरुः॥ महीधरः॥

इसी प्रकार अग्नि के मुख जिह्वा हृदय का वर्णन उपचार से किया गया है। यजु० ८।२४, ८।२५।

इससे स्पष्ट प्रकट कि मुख जिह्वा हृदय के समान पुत्रादि का भी प्रयोग लाक्षणिक है।

इसलिये इस मंत्र में कक्षीवान के दो अर्थ लिये गये हैं। एक विद्वान दूसरा सईस, दोनों का स्पष्टी करण कर दिया गया है।

रावण

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।

स सोम प्रथमः पपौ सचकाराऽरसं विषम् ॥

पहले एक ब्राह्मण दश शिर और दश मुख वाला पैदा हुआ फिर उसने देवतादि से लेकर सोम पिया उसने ही रस को विष किया ।

समीक्षा—लेखक ने यहां पर पाखण्ड का हद कर दिया । प्रकरण विरुद्ध अर्थ करके जनता की आंख में धूल झोंका है । यह सूक्त का सूक्त विष की चिकित्सा का है । ब्राह्मण कन्द-गृष्टि नामक ओषधि है । जिसका गुण विषपित्त कफापहा लिखा है । अर्थात् इससे विष, पित्त और कफ का नाश होता है । इसके हा विश्वक्सेना वाराही कौमारी ब्रह्मपत्री त्रिनेत्रा अमृत आदि नाम हैं । इसके गुण ये हैं ।

वाराही तिक्तकटुका विषपित्तकफापहा ।

कुष्ठमेह कृमिहरा वृष्या बल्या रसायनी ॥

राज निघण्टु ॥

आप अर्थ करते हैं कि पहले एक ब्राह्मण पैदा हुआ जिसके दश सिर और दश मुख थे और इससे रावण का ग्रहण करते हैं । "पहले" यह शब्द ही बतला रहा है कि रावण के बाद इस मंत्र को किसी ने बनाया । क्या आप इसे मानने को तैयार हैं "रसको विषकर दिया" यह अर्थ

भी बिलकुल गलत है। जो प्रकरण के विरुद्ध अर्थ करके जनता को धोखे में डालना चाहता हो वह वेद निन्दक नहीं तो क्या है? प्रथमः पुलिंग पद ब्राह्मण का विशेषण है जिसका अर्थ होता है सर्वश्रेष्ठ। पर आपने इसका अर्थ किया "पहले" यह भी आपकी पण्डिताई का एक नमूना है।

वेद मंत्र का अर्थ यह है—

(ब्राह्मणः) ब्राह्मण नामक औषधि (प्रथमः) सब औषधियों में श्रेष्ठ (जज्ञे) उत्पन्न हुआ। जो (दशशीर्षः) दश प्रकार के रोगों का नाशक (दशास्यः) दश अङ्गों की पीड़ा को बाहर फेंक देने वाला है। क्योंकि (स प्रथमः) वह सर्वश्रेष्ठ होने के कारण से (सोमं पपौ) सोम अमृत की रक्षा करता है (स) वह (विषं) विष को भी (अरसं) वीर्य रहित (बेकार) कर देता है।

आगे इस सूक्त में जितने मंत्र आये हैं सब ही विष-नाशक औषधियों का वर्णन करते हैं। कालूराम जी ने प्रकरणविरुद्ध अर्थ करके लोगों को धोखा दिया है। पाठकों को चाहिये कि सम्पूर्ण सूक्त पढ़कर कालूराम की धूर्तता का पता लगावें।

सीता

जिस प्रकार मंत्र में दशरथ और दशास्य देखकर कालूरामजी ने उनसे रामजी के पिता दशरथ और लंकाधिपति रावण का ग्रहण करके मूर्ख जानता को धोका दिया है उसी प्रकार निम्न लिखित मंत्रमें सीता शब्द को देखकर आपने प्रकरण विरुद्ध जनक पुत्री सीता का ग्रहण किया है।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहेत्वा।
यथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि॥

ऋ० म ४ सूक्त ५७

हे राक्षसों का अन्त करने वाली जानकी मैं तुझको प्रणाम करता हूं। हमको सुभग ऐश्वर्य का दान करो प्रतिपक्ष का नाश करो। हम पर अनुकूल हो

समीक्षा—इस सत्तानवें सूक्त में ८ मंत्र हैं। इनका देवता क्षेत्रपति है। इन आठो मंत्रों में कृषिकी शिक्षा है। किसी भाष्य का अर्थ आप पढें आपको कालूरामजी की धूर्तता का पता लग जायगा।

इनसे पूछना चाहिये कि राक्षसों का अन्त करने वाली, प्रतिपक्ष का नाश करो हम पर अनुकूल हो यह किस पदका अर्थ है? अध्याहार प्रकरण के अनुसार हो सकता है पर यहां तो इसका कोई प्रकरण ही नहीं है। फिर यह धींगा धींगी सिवाय धूर्तता के और क्या है मंत्रार्थ यह है:—

(यथा) जिस प्रकार (नः) हमलोगों के लिए (सुभाग असलि) शोभनधन वाली हो और (यथानः) जिस प्रकार हमलोगों के लिये (सुफला असलि) शोभन फलवाली हो उसी प्रकार (सुभगे) शोभन धनवाली (सीते) हे सीता-धारकाष्ठ अथवा लांगल पद्धति तू (अर्वाची भव) नीचे की ओर जाने वाली हो (त्वा वन्दावहे) हमलोग तेरा अभिवादन करते हैं। इस मंत्र में बतलाया है कि लांगलपद्धति (कूंडा) जितनी ही गहरी होगी उतना ही क्षेत्र में प्रचुर अन्न होगा उतनी ही अच्छी फसल होगी।

इसी सूक्त में इसी मंत्र के आगे सीता शब्द और आया है।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु।
सानः पयस्वती दुहामुत्तरा मुत्तरां समाम्॥

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना स्मान्सीते पयसाभ्याववृत्स्व॥

यजु० १२.७०

उक्त दोनो मंत्रों में भी सीता शब्द आया है। दूसरे मंत्रमें सीता का सीते सम्बोधन में रूप भी है। फिर उसी प्रकरण में सीता का अर्थ जानकी क्यों नहीं करते ?

प्रश्न—यहां पर वन्दाव हे पद सिद्ध करता है कि सीता कोई चेतन वस्तु है क्यों कि अभिवादन चेतन के हो लिये होता है और सीते सम्बोधन से भी सीता कोई चेतन वस्तु ही सिद्ध होती है

उत्तर-वेद की शैली नजानने वालोंके हृदय में इस प्रकार का भ्रम उठना कोई आश्चर्य्य नहीं। इसलिये इस पर कुछ विस्तार पूर्वक प्रकाश डालना अत्यावश्यक है।

श्रद्धां प्रात र्हवामहे श्रद्धां मध्यं दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेहनः॥

ऋ० १०।१५१।५

हम उपासक प्रातः काल श्रद्धा देवी को बुलाते हैं। मध्याह्नकाल में श्रद्धा देवी को बुलाते हैं। सूर्य के अस्त बेलामें भी श्रद्धा देवी को बुलाते हैं। हे श्रद्धे आप यहां हमको श्रद्धान्वित कीजिये।

विश्वास का नाम श्रद्धा है। श्रद्धा कोई शरीर धारिणी चेतना वती देवता नहीं तथापि वेद इसको सम्बोधन पद से युक्त करके वर्णन करते हैं। इसी का नाम आरोप है।

वस्तु में तद्भिन्न वस्तु के कथनका नाम आरोप अध्यारोप अध्यास आदि है। जैसे रज्जु में सर्प का ज्ञान। परन्तु वेद में ऐसे आरोप से तात्पर्य्य नहीं किन्तु प्रत्येक पदार्थ के प्रत्यक्षवत् वर्णन करने का नाम आरोप है। अथवा क्या गुण, क्या गुणी क्या जड़ क्या चेतन प्रत्येक पदार्थ को सम्बोधन युक्त अथवा युष्मद् पद युक्त वर्णन करने का नाम आरोप है।

आरोप का परिणाम रूपक होगा। क्योंकि जब हम जड़ वस्तु को सम्बोधन करके वर्णन करेंगे तो समझा जायगा कि यह हमारा कथन सुनती है। हम पर दया करती है।

इत्यादि। सुनने सुनाने वाला चेतन होता है। अतः आरोप के साथ साथ चेतनत्वका संस्कार झटसे हो जाता है और जब चेतनत्व का संस्कार होगा तो उसको नर या नारी देव या देवी कह करके निरूपण करेंगे। वेद में रूपक में वर्णन अधिक है।

(१) ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः॥
अश्वा इव सजित्वरी वीरुधः पारयिष्णवः॥
यजु १२-७७

(२) काम कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्यः ओषधीभ्यः॥
यजु० १२-७२

(३) अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे।
शिरिं विठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि॥
ऋ० मं० १० सू० १५५ मंत्र १

इस तरह एक दो मंत्र नहीं सैकड़ों मंत्र चेतन वत् जड़के सम्बोधन के मोजूद हैं। महीधर भाष्य देखो जिनमें चर्म स्तम, आसन्दी, कल्लोल रेखा, उषा उखाघृतपात्र जल ब्रीहि शकट उलूखल मूसल आदि चेतनवत् सम्बोधन में मिलेंगे। इस लिये जड़ के सम्बोधन पर शंका करनी अज्ञानता है। वेद की जब शैली ही यह है तब शंका उठही कैसे सकती है।

शोकतो इस बात का है कि संस्कृत साहित्य पर

जब संस्कृत भाषा में ऐसे प्रयोग पाते हैं तो वहां इन्हें शङ्का नहीं होती पर वेद में ऐसे पदों को देखकर झट शंका करने लग जाते हैं उदाहरण के लिये दो चार प्रमाण देते हैं।

(१) विश्वासय मधुरवचनैः साधून्ये वंचयन्ति नम्रतमाः। तानपिदधासि मातः काश्यपि यातस्तत्रापि च विवेकः॥

(२) अग्निदाहेन मे दुःख छेदेन निकषेन वा। यत्तदेव मह द्‌ःखं गुंजया सह तोलनम्॥

(३) गुणवतस्तव हार न युज्यते परकलत्रकुचेषु विलुण्ठनम्॥ स्पृशति शीत करो जघनस्थलों मुचितमस्तितदेव कलङ्किनः॥

(४) श्रीमता कथय कञ्चुक पूर्व कानि कानि सुकृतानि कृतानि॥ जन्म यापयसियेन समस्तं हारहृद्यहृदये हरिणाक्ष्याः॥

(५) दृढतरगलक निबन्धः कूपनिपातोपि कलश ते धन्यः। यज्जीवनदानैस्त्वं तर्पामर्पन्नृणां हरन्ति॥

उक्त श्लोकों में पृथिवी, सुवर्ण, हार कंचुक, कुम्भ आदि को चेतनवत् वर्णन किया गया है। यहां पर शंका क्यों नहीं करते। इसी प्रकार कमल जल कूप [illegible] [illegible] लता आदि का युष्मद् युक्त प्रयोग भाषा के ज्ञानियों ने किया है।

इसी प्रकार ब्राह्मण में भी प्रयोग आता है।

तं तपोऽब्रवीत्। प्रजापते तपसावै आम्यसि। अहमुतपोऽस्मि। मांनु यजस्व।

तं श्रद्धाब्रवीत। तं सत्यमब्रवीत्। तंमनोऽब्रवीत् इत्यादि। अङ्गरेजी में भी इसी प्रकार का प्रयोग पाया जाता है। यथा O Death, O Dawn

कृष्णावतार

कृष्णन्त एम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चिर्वपुषामि देकम्
यद् प्रवीतादधते हगर्भं सद्यश्चिज्जा तो भवसी दुदूतः ॥

अर्थ-हे भूमन् आपको सत्यानन्द चिन्मात्ररूप है और रुद्ररूप से तीन पुरको नाश करनेवाला स्थूल-सूक्ष्म कारण देह को ग्रसनेवाला रूप तुरीयात्मा तिस कृष्णभारूप को हम प्राप्त होवें जिस आप के स्वरूप की एक ही अर्चि ज्वालामात्र समष्टि जीव अनेक देहों में चरिष्णु अर्थात् भोक्ता रूप से वर्तमान हैं और जो कृष्णभा को निगड़ग्रस्त देवकी गर्भरूप से धारण करती भई। आप शीघ्र ही गर्भ से प्रादुर्भूत होकर माता के पास से पृथक् हुये।

इस मन्त्र में कृष्ण शब्द आ गया बस अवतार की सिद्धि हो गई। जैसे "भद्रो भद्रया" इस मन्त्र में राम शब्द देखकर रामावतार ले बैठे उसी प्रकार यहां कृष्ण शब्द देखकर वैसे ही खींच तान कर कृष्णावतार सिद्ध करने लग गये। मन्त्र का देवता है अग्नि, पर आप मन्त्र का देवता कृष्ण को बनाते हैं इससे बढ़ कर पाखण्ड और क्या हो सकता है। इस

मन्त्र पर सब से पुराना भाष्य सायण का है। जिसे कोई भी सनातनी इनकार नहीं कर सकता। सायण ने इस 'मन्त्र का जो अर्थ किया है उसे नीचे दिया जाता है ताकि जनता समझले कि ये लोग किस प्रकार अर्थ का अनर्थ करते हैं। मन्त्र में अप्रवीताः यह बहुवचन पद है आपने इसका अर्थ देवकी किया है। पं० ज्वाला प्रसाद ने दूत का अर्थ माता को खेद करने वाला किया है यह अर्थ भी चिन्तनीय है। पं० कालूराम ने दूत का अर्थ छोड़ ही दिया है। "माता के पास से पृथक हुये" यह किस पद का अर्थ है, यह समझ में नहीं आता।

कृष्णं भाः का अर्थ " सत्यानन्दचिन्मात्रं रूपं " यह अर्थ किस कोष वा व्याकरण वा आचार्य्य की शैली से होगा?

ग़रज़े कि कितना ही खींचतान करो इस मन्त्र से किसी भी तरह से कृष्णावतार सिद्ध नहीं कर सकते।

सायणा नुसार मन्त्रार्थ यह है:—

हे अग्ने! रुशतः रोचमानस्य ते तव अत्रेम एमन् शब्देन गमन मार्ग उच्यते एम वर्त्म कृष्णवर्णं भवति भाः तव सम्बधिनी दीप्तिः पुरः पुरस्तात् भवति। चरिष्णु संचरणशीलम् अर्चिस्त्वदीयं तेजः वपुषां वपुष्मतां रूपवतां तेजस्विना मित्यर्थः। एकमित् मुख्यमेव भवति यत् यं त्वं अप्रवीता अनुपगता यजमानाः गर्भं स्वजननहेतुमरणिं दधते ह धारयन्ति खलु। सत्वं

अग्रश्चित् सद्य एव जातः उत्पन्नः सन् दूतो भवसि हद्‌ यथा मानस्य दूतो भवत्येव ॥

अर्थ—हे अग्ने, प्रकाशमान तेरे गमन का मार्ग कृष्णवर्ण (काला) है। तेरा प्रकाश आगे रहता है। व्यापनशील तेरा तेज ही सम्पूर्ण रूपवान तेजस्वियों में मुख्य है। तेरे समीप न गये हुये यज मान लोग जब तेरी उत्पत्ति के कारण अरणिको धारण करते हैं त्यों ही तू उत्पन्न हो कर यजमान का दूत बन जाता है।

भावार्थ यह है कि जहां होकर आग निकलती है, वहां काला पड़ जाया करता है। आग के साथ साथ प्रकाश आगे आगे चलता है प्रकाश का स्वभाव ही चलने का है। अग्नि का ही प्रकाश तत्स्वरूप से प्रत्येक रूपवान पदार्थों में मुख्य है। जब यजमान अग्नि को दो अरणियों के गर्भ से उत्पन्न करते हैं। उत्पन्न होते ही वह दूत का काम करता है। अर्थात् देवता ओं को हविर्भाग यथायोग्य पहुँचाता है। अग्नि का देव दूतत्व वेद में प्रसिद्ध है।

इस अर्थ में कृष्ण देवकी आदि का गन्ध नहीं। कालूराम जी लिखते हैं कि सायण भाष्य मानोगे, तो मूर्ति पूजा सिद्ध हो जावेगी। उत्तर में निवेदन है कि यह प्रमाण आपके लिये है। आप क्यों न मानियेगा? आपको तो मानना पड़ेगा। सायण के अर्थ मानने पर भी इसमें मूर्ति पूजा का गन्ध नहीं है।

आप एक ऐसे भाष्य का नाम लेते हैं जिनको लोग जानते ही नहीं और न उनका कोई भाष्य प्रचलित है। नीलकण्ठ कौनसा भाष्यकार हुआ, ऋग्वेदपर इसका भाष्य कहां मिलता है। कृपया बतलाइये तो सही। या यों ही लोगों के सामने हौवा उपस्थित करते हैं।

स्वामी जी ने प्रथम समुल्लास में कृष्ण ब्रह्मका नाम है ऐसा कहीं नहीं लिखा है। इस प्रकार झूठ लिखते कालूराम को लेशमात्र भी लज्जा न आई। महा भारत को स्वामीजी ने व्यास कृतमाना है ईश्वरकृत नहीं। इस झूठ के लिये तो तुम्हें चिल्लू भर पानी में डूब कर प्रायश्चित करना चाहिये।

कृषि र्भू वाचकः शब्दः नश्च निर्वृत्ति वाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभि धीयते॥ यह कोई आर्ष प्रमाण नहीं। कृष्ण जी के भक्तों ने इसे लिख मारा है इसके लिये कोई प्रमाण नहीं।

"एत द्घोर आंगिरसः कृष्णाय देवकी पुत्राय" इत्यादि छान्दोग्यो पनिषद् के वाक्य का मंत्र से कोई सम्बन्ध नहीं और न इस उद्धरण में कृष्ण को परमात्मा कहा गया है फिर व्यर्थ में कागज रंगने से क्या लाभ हुआ?

मत्स्यावतार

कालूराम जी शतपथ ब्राह्मण की कथा देकर कहते हैं कि स्वामी जी ने शतपथ को प्रमाण माना है। जब शतपथ में मत्स्यावतार लिखा है तो आर्य समाजियों को मानना ही पड़ेगा।

पाठकों के ज्ञान के पहले कथा लिखी जाती है क्योंकि बिना कथा जाने उत्तर को कोई समझ न सकेगा।

प्रातः काल मनु जी के स्नान के लिये स्नान योग्य जल वे लोग ले आये। वे लोग हाथों से स्नान के लिये उसको लाया करते थे। इस प्रकार उस जल से स्नान करते हुये मनु जी के हाथ में एक मत्स्य आ पड़ा। उसने कहा कि मेरा भरण पोषण करो मैं तुमको पार उतारूंगा मनु जी बोले आप किससे मुझे पार उतारेंगे। मत्स्यने कहा कि समुद्र की बाढ़ इन सब प्रजाओं को बहाकर ले जाने वाली है। उससे मैं आप को पार उतारूंगा। मनु जी ने कहा कि आप का पोषण कैसे हो सकता है मत्स्य ने कहा कि जब तक हम छोटे रहते हैं तब तक हमारे नाश करने वाले अनेक जीव होते हैं क्योंकि मत्स्य मत्स्य को ही निगलता है अतः मुझको किसी एक घड़े में रख कर पालन करें जब मैं घड़े से बड़ा हो जाऊं तब एक खाई खोदकर उसमें रख दें। जब उससे भी बड़ा

हो जाऊं तब मुझे समुद्र में ले जायें तब मैं निर्विघ्न निरुपद्रव हो जाऊँगा। क्योंकि उसमें मत्स्य सर्वदा सुख से रहते और बढ़ते हैं। तब उसने बाढ़ आने की तिथि बतलाई कहा कि जिस वर्ष में बाढ़ आने वाली हो आप एक नौका तैयार कर मेरी राह देखें। बाढ़ उठने पर मैं नौका के पास आऊंगा और उससे आप को पार करूंगा ॥ ४ ॥ उसको इस प्रकार पालन करके समुद्र में पहुँचा दिया उस मत्स्यने जो तिथि और सम्बत्सर बतलाया था, उस तिथि और वर्ष में नौका तैयार करके मनु जी उस मत्स्य का राह देखने लगे। बाढ़ आने पर वह मत्स्य नौका के पास आया उसकी सींग में मनु ने नौका बांध दी। उस नौका को लेकर मत्स्य उत्तर गिरिकी ओर दौड़ा। वह बोला कि मैंने आप को पार उतार दिया। इस वृक्ष में नौका बांध दीजिये। जब तक पानी रहे तब तक इसी पर्वत पर रहें। जब पानी घट जाय तब आप उस पहाड़ से उतरें। मनु ने वैसा ही किया। आज तक उत्तर गिरि के निकट मनु जी का अवसर्पण (उतराव) प्रसिद्ध है। इसके बाद वह ओघ उन सब प्राणियों को बहा कर ले गया। केवल अकेले मनुजी बच गये।

इसके बाद प्रजाकी इच्छा से पूजा और परिश्रम करते हुये मनु जी विचरण करने लगे। वहां पर भी पाकयज्ञ से यज्ञ किया। घृत दधि मस्तु (दधिरस) आमिक्षा (फटा दूध) को लेकर जल में आहुति डाली। तब एक वर्ष में एक स्त्री

पैदा हुई। वह धीरा गंभीरा के समान उदित हुई। उसके चरण में घृत लगा था। मित्र और वरुण उस स्त्री से मिले। उससे इन दोनों ने कहा कि आप कौन हैं ? वह बोली कि मैं मनु की कन्या हूं। उन्हों ने कहा कि तुम ऐसा मत कहो किन्तु 'आप दोनों की दुहिता हूं'। ऐसा आप कहा करें। उसने उत्तर दिया कि नहीं। ऐसा मैं न कहूंगी मैं उसकी कन्या हूं जिसने मुझे उत्पन्न किया है। उन दोनों ने उसमें भाग लेना चाहा। उसने प्रतिज्ञा की अथवा नहीं, परन्तु वह मनु के निकट आई। मनु ने कहा कि तू कौन है ? उसने कहा कि मैं आप की बेटी हूं। मनु ने कहा भगवति, तू मेरी कन्या कैसे है ? उसने कहा कि आप ने जो ये आहुतियां जल में डाली हैं (घृत दधि मस्तु और आमिक्षा को) उनसे आपने मुझे उत्पन्न किया है मैं वह आशी (आशर्वाद) हूं। मुझे यज्ञ में कल्पित कीजिये। यदि आप मुझे यज्ञ में स्थापित करेंगे तो आप प्रजा और पशुओं से बहुत होवेंगे। जिस आशाको आप मेरे द्वारा चाहेंगे आप को सब प्राप्त होगी। उसने अपनी दुहिता को जो मध्य यज्ञ होता है उमें कल्पित किया। क्योंकि वही यज्ञ का मध्य है। जो प्रयाज और अनुयाज के मध्य में आता है ॥ ८ ॥ वह मनु प्रजा की इच्छा से उसके साथ पूजा और श्रम करते हुए विचरण करने लगे। उसके द्वारा मनुने इस प्रजा को उत्पन्न किया। जो यह मनु की प्रजा कहलाती है। उससे जो इच्छा

मनु ने की वह सब उनको प्राप्त होती गई ॥ १० ॥ यह निश्चय इड़ा है सो जो कोई इस इड़ाके साथ विचरण करता है वह भी प्रजा को प्राप्त करता जिसको मनु ने प्राप्त किया था और उससे जो कामना करता है । वह सब उसे प्राप्त करता है ।

समीक्षा—यह एक आलंकारिक कथा है । इसमें अवतार का नामो निशान नहीं है । अद्भुत कथा को देखकर अवतार की कल्पना कर बैठना सिवाय अज्ञान के और क्या है ?

जो मत्स्य स्वयं अपनी रक्षा के लिये दूसरे का आश्रित है, वह मत्स्य ईश्वर का अवतार कैसे होगा ? यह बात कालूराम के समझ में क्यों न आई । यदि इस कथा में मनु से उसी मनु का ग्रहण हैं जो इक्ष्वाकुवंश का आदि पुरुष था, तो उसकी लड़की इड़ा कौन है ?

उसकी स्थापना यज्ञ में कैसे ? क्या मनु ने उसके साथ उपभोग करके सन्तान उत्पन्न किया ? आगे इसी इड़ा के साथ सबके ही विचरण करने की बात लिखी है अतः इस कथा का मनु आलंकारिक है क्योंकि कन्या भी आलंकारिक ही है । यह इड़ा प्रयाज और अनुयाज के मध्य स्थापित होती है अतः सिद्ध है कि इड़ा अस्मदादिवत् कोई शरीरधारी कन्या नहीं है । इस लिये मानना पड़ेगा यह कथा यज्ञ परक आलंकारिक है ।

यदि मनु से कोई व्यक्ति विशेष का ग्रहण किया जाय तो

सृष्टि की उत्पत्ति से दूसरे प्रलय तक किसी की आयु इतनी लम्बी नहीं हो सकती। इससे भी पता चलता है कि यहां पर याज्ञिक कथा के बनाने में मनु की कल्पना की गई है।

तीसरी बात मार्के की यह है कि इस कथा में केवल मनु के बच जाने की बात लिखी है, परन्तु मत्स्य पुराण में सप्त ऋषि के साथ मनु के बच जाने की बात लिखी है। इससे भी स्पष्ट है कि कथा काल्पनिक है ऐतिहासिक नहीं।

यहां पर जल के साथ मनु के हाथ में मत्स्य का आ जाना लिखा है, परन्तु मत्स्य पुराण में इसके विरुद्ध लेख है। उसमें लिखा है।

> ऊर्ध्वबाहुर्विशालायां बदर्यां स नराधिपः।
> एकपदस्थितं तीव्रं चचार सुमहत्तपः॥ ४॥
> अवाक्‌शिरास्तथा चापि नेत्रै रनिमिषैर्दृढम्।
> सो तप्यत तपो घोरं वर्षाणामयुतं तदा॥

वह ऊर्ध्व बाहु और एक पैर के बल स्थित हो विशाल बदरी में तीव्र तप करने लगे। नीचे शिर करके, बिना हिले डुले घोर तप एक लाख वर्ष तक किया। ऐसी दशा में उनके पास एक मत्स्य गया और अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना की मनु ने उसे घड़े में बावड़ी में, गंगा में पश्चात् समुद्र में छोड़ा। कथा में इतना अन्तर क्यों? यह अन्तर ही कथा को काल्पनिक सिद्ध करता है।

यह कथा बायबिल और कुरान में नूह की किश्ती के रूप में वर्णित है। वर्णन में थोड़ा सा अन्तर है। यहीं से यह कथा बायबिल और कुरान में गई है। कथा के भाव को न समझ कर बायबिल और कुरान में इसे ऐतिहासिक रूप दे दिया।

नारद पुराण उत्तरार्ध ख० ६७ में कुछ और ही लिखा है।

सुप्तस्य ब्रह्मणो वक्त्रात् निर्गतान सुरोऽहरत्।

वेदान् हय शिरा नाम देवादीनां भयावहः॥ ४६॥

ततस्तु ब्रह्मणा विष्णुः प्रार्थितः प्रकटोऽभवत्।

अर्थ—सोये हुये ब्रह्मा के मुख से निकले हुये चारों वेदों को हयग्रीव नामक असुर हरण कर ले गया। तब ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर विष्णु मछली का रूप धरके उसे मारा और वेद को ले जाकर ब्रह्मा को फिर देदिया।

कालूराम जी ब्रह्मा को विष्णु का अवतार मानते हैं जैसा कि इसी पुस्तक में अपने पीछे लिखा है जिसकी समालोचना भी इस ग्रन्थ में हो चुकी है। इनके एक अवतार के पास से हयग्रीव वेद उठा ले जाता है। तब विष्णु मछली बनकर उसे मारते है।

पाठको, देखिये ये सब कथायें, परस्पर कितनी विरोधी हैं। इससे स्पष्ट है कि पौराणिकों ने बिना समझे बूझे जो जी में आया, लिख मारा।

पुनश्च वाराह पुराण अ० ६ में देखिये।

जिस समय सृष्टि हुई तो वेद की आवश्यकता पड़ी। वेद जल में डूबा था।

ततः स्वमूर्तौ तोयाख्ये लीनान् दृष्ट्वा महेश्वरः।
जिघृक्षुः चिन्तया मास मत्स्यो भूत्वा विशञ्जलम् ॥ २५ ॥
एवं ध्यात्वा महामत्स्य तत्क्षणात्समजायत।
विवेश च जलं देव समन्तात् क्षोभयन्निव ॥

देवता लोग स्तुति * * * करने लगे इसके पश्चात्।

एवंस्तु तस्तदा देवो जलस्थाऽजगृहे च सः।
वेदान् सोपनिषच्छास्त्रान्स्वयतः स्वरूप मास्थितः ॥

अनेक लोग कहते हैं कि यह कथा ऐतिहासिक ही है। समय समय पर जल प्रलय स्थान स्थान पर हुआ करता है। उसी बात को धार्मिक रूप देकर धर्म के प्रचारकों ने लिखा अस्तु,

आइये अब कथाकी समालोचना करें और देखें कि इसका भाव क्या है। क्या सचमुच एक मत्स्य मनु के निकट आ अपनी अलौकिक लीला दिखलाने लगा। क्या किसी की इतनी बड़ी आयु हो सकती है जो एक प्रलय से दूसरे प्रलय तक जीता रहे। इस आख्यान के विषय में अनेक प्रश्न उठते हैं। भगवान ने अकेले मनु के बचाने में कौन सा प्रयोजन समझता था? यदि मनु मात्र एक पुरुष जल प्रलय के बाद नहीं बचता तो क्या आगे मनुष्य सृष्टि ही बन्द हो जाती?

ऐसा नहीं हो सकता। क्योंकि आदि सृष्टि में जैसे भगवान ने सृष्टि रचना की वैसे ही प्रलयोत्तर भी कर सकता है और करता है। फिर शतपथ ब्राह्मण कहता है कि "अप" में आहुति देने से एक कन्या इड़ा उत्पन्न हुई। परन्तु इसको मनु नहीं जानते थे। इस कन्या से मित्र वरुणमिले उन दोनों ने उसे अपनी कन्या बनाना चाहा। परन्तु वह न बनी और मनु से कहा कि मैं आप की कन्या हूं आप मुझे यज्ञ में स्थापित कीजिये। इससे आप का सब मनोरथ सिद्ध होगा। ऐसा ही हुआ मनु इससे प्रजावान् हुये। इत्यादि कथापर जब विचार करते हैं तो यह कथा बाल प्रलापवत् मालूम पड़ती है। वेदों में इसका वर्णन नहीं है। पर जब शतपथ ब्राह्मण वर्णन कर रहा है तो इसका कुछ गूढ़-आशय होगा। ब्राह्मण ग्रन्थ प्रत्येक विषय को सरल-आलंकार में वर्णन करते हैं। यहां भी एक अलंकार है ब्राह्मण ग्रन्थ कर्मकाण्ड का वर्णन अधिक करते हैं। कर्म के प्रधान देवता सूर्य अग्नि और वायु माने गये हैं। इन तीनों में भी सूर्य की प्रधानता अधिक है। सारे कर्मकाण्ड सूर्य के ही प्रतिपादक हैं और इसके द्वारा परमात्मा की उपासना कथित है। इस सौर जगत में सूर्य ही प्रधान देवता है इसी के उदय और अस्त को यह मनु-मत्स्य-आख्यायिका दरसाती है। सूर्य का क्रमशः उदित होकर चढ़ाना ही मत्स्य का विस्तार होना है। रात्रिका आना ही प्रलय काल है। मनु मनन शील ज्ञानी मनुष्य का नाम है।

प्रातः काल स्नान का समय है। सूर्योदय होते होते ज्ञानी जन सन्ध्या कर लेते हैं। इस समय सूर्य का आगमन ही मानो ज्ञानी जन के हाथ में मत्स्य का आना है। क्योंकि इसी समय से यज्ञ का आरंभ होता है।

ज्ञानीजन अग्नि को प्रज्वलित करके हवन करना आरंभ करते हैं। अग्नि का प्रज्वलित करना ही मानो सूर्य रूप मत्स्य का बढ़ना है। उधर आकाश में भी सूर्य बढ़ते हुये दीखते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि अग्नि भी सूर्य रूप ही है। सूर्य ही का अंश अग्नि है। किसी पात्र में धर कर प्रथम अग्नि को कुण्ड में स्थापित करते हैं। अग्नि का पात्र में रखना ही घड़े में मत्स्य का स्थापित करना है। उससे कुण्ड में स्थापित करना ही मत्स्य का खाई में आना है। अब कुण्ड में अग्नि बढ़ने लगा उसमें न समा सका आकाश में चारों ओर फैल गय। उधर सूर्य भी अपनी किरणों से आकाश में सर्वत्र विस्तृत हो गया अग्नि का चारों तरफ फैलना ही मत्स्य का समुद्र में आना है इस प्रकार प्रातःसवन मध्य' दिन सवन और सायं सवन तीनों सवन समाप्त करके आह्निक कर्म की समाप्ति होती है। जो ज्ञानी जन इस प्रकार आह्निक कर्म की समाप्ति होती है। जो ज्ञानी जब इस प्रकार कर्म करता है उसे कर्म रूप मत्स्य अवश्य रक्षा करता है। कर्म काण्ड का यह संकेत है कि कर्म फल स्वरूप भी सूर्य ही माना गया है। अब सायंकाल प्राप्त होता है।

यही प्रलय है । इसमें अज्ञानी लोग विविधव्यसनों के शिकार बनकर नष्ट हो जाते हैं । इसमें वे ही लोग बचते हैं जो वैदिक कर्म में तत्पर हैं वे कर्मरूप महा नौका में चढ़कर उच्चतर भावकी ओर चलते हैं। यह उच्चतर भाव ही हिमालय पर्वत है । जब रात्रिरूप प्रलय घटने लगता है तब वे पुनः उतरते हैं अर्थात् पुनः कर्म करना आरम्भ कर देते है। वे ज्ञानी प्रलय काल में क्या करते हैं । कहा गया है कि अप में आहुति देते हैं । अर्थात् दुर्व्यसनों से बचकर परमात्मा में मन लगाते हैं । और प्राणायाम द्वारा मनको रोकते हैं। इनसे एक दुहिता उत्पन्न होती है । यह दुहिता सुबुद्धि है । यह बुद्धि मनन और विचार से उत्पन्न होती है । तथा प्राणायाम इसकी उत्पत्ति में सहायक होता है। इसी प्राणायाम—श्वास-प्रश्वास का नाम मित्र वरुण है। इसी लिये इनकी भी पुत्री सुबुद्धि है । इस दुहिता के पैर में घृत लगा रहता है । घृत शब्द यहां कर्म सूचक है क्योंकि घृत से ही आहुति होती है। इस सुबुद्धि रूप दुहिता से ज्ञानी जन प्रजावन होते हैं। अन्यान्य अज्ञानी जन कर्म रूप नौका की सहायता न रहने से रात्रिरूप जल प्रलय में वे डूब मरते हैं। इत्यादि भाव इस कथा का जानना चाहिये । इस बात को न समझ कर कालूराम सरीखे अज्ञानी जन इसे अवतार मान बैठे हैं।

यक्षावतार

कालूराम जी आत्मानभिज्ञता के कारण उपनिषद् की आलंकारिक कथा को अवतार मान बैठे हैं ।

आज कल कालूराम जी सरीखे धूर्त लोग ऐसी ही बातें बनाकर मूर्खों के सामने नया नया अवतार पेश करते हैं। इनको इतनी भी शरम नहीं मालूम होती कि विद्वान लोग इस धूर्तता को देखकर हमें क्या कहेंगे। पाठकों। यह केन उप निषद् की आख्यायिका है । अग्नि में जलाने, वायु में उड़ाने की जो शक्ति है वह शक्ति उनकी निजी नहीं किन्तु ब्रह्म की शक्ति है। उसकी सत्ता से हा इनमें शक्ति आती है। इस बात को दिखलाने के लिये उपनिषद् की आख्यायिका रची गई है। ऐसा सभी विद्वान् चाहे वे सनातनी हों, चाहे कोई हो मानते हैं आज तक किसी भी सनातन धर्मी पण्डित] ने ऐसी धृष्टता न की थी, जैसा कि पण्डित कालूरामने की है।

पीछे, मैंने सप्रमाण सिद्ध करके यह दिखला दिया है कि ईश्वर के दो रूप होते ही नहीं, जिनका उत्तर कोई भी साकार वादी नहीं दे सकता । उपनिषद् से उसके जन्म का निरोध भी दिखला दिया है। जब तक उन प्रमाणों का खंडन नहीं कर लेते तब तक इस प्रकार खींचतान कर अवतार

सिद्धि आप नहीं कर सकते। इस आलंकारिक-आख्यायिका पर अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं समझता। परमेश्वर निराकार है अतः जहां पर साकारवत् वर्णन रहेगा वहां पर उसे आलंकारिक ही मानना पड़ेगा। जैसे दिशायें निराकार हैं परन्तु पुराणों में उनको ब्रह्मा की बेटी लिखकर उनका विवाह दिग्पालोंसे करा दिया है। पर इस आलंकारिक कथा से दिशायें साकार अस्मदादिवत् नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार वेद में यज्ञ के हाथ पैर सिर का वर्णन है पर क्या किसी ने मनुष्यवत् हाथ पैर यज्ञ को देखा है।

इसी प्रकार यहां भी ईश्वर को सर्व शक्तिमान सिद्ध करने के लिये काल्पनिक आख्यायिका बनाई गई है। अग्नि वायु आदि देव जड़ है इनका सम्वाद यहां पर कैसे हो सकता है यदि यहां रूपक न माना जायगा। ऋषिने इन देवताओं का सम्वाद कराकर इनकी अप्रधानता और ब्रह्म की प्रधानता दिखलाई है। कालूराम जी मूर्खों को ठगने के लिये यहां एक अवतार मान लिया। पर इस धींगा धींगी से अवतार का सिद्ध होना टेढी खीर है।

इसके आगे आपने मनुस्मृति से ब्रह्मा का अवतार दिया है जिसकी समालोचना पीछेहो चुकी है। यहांपर फिर उसपर कलम उठाना पिष्टपेषण समझ कर छोड़ देते हैं। इसके बाद गीता और पुराण के प्रमाण दिये हैं। हमें गीता और पुराणपर अधिक कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। गीता तथा

पुराणादि में अवतार का जो भाव है उसकी समालोचना आरम्भ में हो चुकी है जिस भाव में आज कल अवतार का अर्थ लिया जाता है उस भाव में अवतार का अर्थ नहीं है। वहीं पढ़ कर देखिये । गीता पुराण वेद नहीं हैं। आप के लिये उनके प्रमाण उसी रूप से जैसा आप मानते हैं, भले ही मान्य हों, हमारे लिये उसी अर्थ में मान्य हैं जिस अर्थ में इस पुस्तक के आरम्भ में मैंने अवतार विषय में लिखा है।

❀ ❀ ❀ ❀

शंकाध्याय

अब इसके आगे आपने एक अध्याय तर्काध्याय के नाम से लिखा है जिसमें आपही ने तर्क किया है और आपही ने उत्तर दिया है। यद्यपि उन सबका उत्तर पिछले लेखों में आ गया है तथापि अलग-अलग प्रश्न होने से उनकी भी समालोचना यहां पर आवश्यक प्रतीत होती है। अतः क्रमशः उन उन प्रश्नों को देकर उनका उत्तर भी क्रमशः संक्षेपतः यहां पर दिया जाता है।

(१) प्रश्न—ईश्वर तो अजन्मा है फिर अजन्मा का जन्म कैसा ?

उत्तर कालूराम जी का-जीवात्मा जब अजन्मा होकर जन्म धारण करता है तो क्या ईश्वर जीव इतनी भी ताक़त

नहीं रखता, क्या वह जीव से भी निर्बल है कि जीव तो अ-अल्मा होकर शरीर धारण करले और ईश्वर न कर सके।

प्रत्युत्तर—यदि आप को इतनी ही समझ रहती तो क्या इस प्रकार मूर्खों के समान तर्क करते। क्या आप को मालूम नहीं है कि शरीर कर्म फलके भोग के लिये होता है। जीव कर्म करता है। कर्म का फल भोगने के लिये उसे शरीर में आना ही चाहिये क्योंकि यह न्याय का सिद्धान्त है कि "भोगायतनं शरीरम्" यह शरीर दुःख सुख भोग के लिये मिलता है। ईश्वर जीव से भिन्न है उसे दुःख सुख भोगना नहीं, कर्म फल का उसे भोग नहीं, फिर उसका शरीर कैसे हो सकता है। क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेष ईश्वरः ॥ योग दर्शन। ईश्वर क्लेश, कर्म का फल, तथा वासनाओं से रहित है अतः उसका शरीर धारण करना बन ही नहीं सकता। केवल साधर्म्य मात्र से जीवात्मा के समान उसका शरीर धारण करना नहीं बन सकता। इसमें ईश्वर के वैधर्म्य गुण बाधक हैं।

जीवात्मा के जन्म में उसका कर्म कारण है। क्या आप बतला सकते हैं कि परमात्मा के जन्म में कौनसा कारण है। जब कोई कारण नहीं, तो "कारणाभावात्कार्याभावः" कारण के अभाव में कार्य का अभाव स्वयं सिद्ध है।

(२) आपने उसके जन्म में भक्ति को कारण माना है और एक बनावटी कहानी पेश करके अपना मतलब सिद्ध

करना चाहते हैं। तर्क के स्थान पर कहानी देना नादानी है। आपकी दी हुई कहानी यह है।

अकबर ने बीरबल से पूछा कि ईश्वर अवतार क्यों लेता है। बीरबल ने ६ महीने का अवकाश मांगा। बीरबल ने एक कारीगर द्वारा बादशाह के लड़के के शकल का एक मोम का लड़का बनवाया। एक दिन बादशाह हवा खाने के लिये नाव पर सवार हुये और बीरबल का राह देखने लगे इतने में बीरबल उस लड़के को लेकर आ पहुँचा नावपर सवार हो गया। जब नाव बीच धार में पहुँची तो बीरबल ने बहाने से उस लड़के को धार में छोड़ दिया और चिल्ला उठा कि लड़का पानी में गिर गया। बस क्या था बादशाह स्वयं जल में कूद पड़ा और लड़के को पकड़ कर ले आया तो मालूम हुआ कि यह लड़का मोम का है। बीरबल पर बहुत नाराज़ हुआ और बोला कि तुमने इतनी धृष्टता क्यों की। यह सुनकर बीरबल बोला-हुज़ूर को भी इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिये थी। आपके पास इतने नौकर चाकर होते हुये भी आप जल में क्यों कूद पड़े। बादशाह ने कहा कि मैं अपने पुत्र के प्रेम में पागल हो गया था इसलिये हुक्म देने की अपेक्षा आप ही आप जल में कूद पड़ा। बीरबल ने कहा हुज़ूर यह उस दिन के अवतार के प्रश्न का उत्तर है। जब भक्त पर कष्ट पड़ता है तो वह और किसी को आज्ञा न देकर प्रेम में स्वयं दौड़ पड़ता है।

आपकी इस कहानी से अज्ञानियों को तो संतोष हो जायगा परन्तु कोई भी ज्ञानवान इसे स्वीकार नहीं कर सकता। राजा अज्ञानी था उसे पता न था कि यह मोम का लड़का था यदि उसे मालूम होता तो वह कभी न कूदता राजा के जल में कूदने का कारण उसका अज्ञान है परमात्मा अज्ञानी नहीं। अतः यह उदाहरण परमात्मा पर नहीं घट सकता।

जो परमात्मा विना शरीर के हो सम्पूर्ण सृष्टि को पैदा कर रहा है और किया, उसको दुष्टों के मारने और भक्तों की रक्षा के लिये शरीर धारण की कोई आवश्यकता ही नहीं। वह जिस प्रकार अपनी व्यापकता से सृष्टि उत्पन्न करता है, वैसेही अपनी व्यापकता से चाहे जिसकी रक्षा कर सकता है चाहे जिसे क्षणमात्र मे मार सकता है। शरीर धारण की आवश्यकता ही क्या?

आप की दलील भी आपके सिद्धान्त पर लागू नहीं होती। २४ अवतार माने जाते हैं इसमें सिवाय राम और कृष्ण के और कहीं पर भी भक्तों ने शरीर धारण के लिये नहीं पुकारा। परशुराम वाराह मत्स्य कच्छप बुद्ध के अवतार के लिये किस भक्त ने पुकारा? और अब क्या भक्त लोग नहीं हैं? अब उनके पुकार पर अवतार क्यों नहीं लेता? उसे तो प्रति दिन अवतार लेना चाहिये क्योंकि किसी न किसी भक्त पर संकट पड़ा ही करता है और भक्त लोग उसे

कातरभाव से पुकारा करते हैं। इस समय तो अवतार की बड़ी आवश्यकता है। करोड़ों गौवें मारी जाती हैं ब्राह्मणों पर बहुत विपत्ति है। आज कंस और रावण सरीखे सैकड़ों क्या हजारों राक्षस संसार को कष्ट दे रहे हैं। वह अवतार क्यों नहीं लेता? अथवा क्या अवतार लेते लेते परेशान हो गया है? या भक्तों की सुनता ही नहीं, अथवा बहरा हो गया है। आर्य समाजियों के मारे परेशान हो, सब लोग अवतार के लिये प्रार्थना क्यों नहीं करते? पण्डितजी, ऐसी कथाओं से अवतार सिद्धि नहीं हो सकती।

(३) निराकार ईश्वर साकार कैसे हो सकता है? क्यों कि यदि वह शरीर धारण करेगा तो फिर निराकार कैसे रहेगा। इसका उत्तर कालूराम यह देते हैं।

(क) यदि निराकार से साकार नहीं हो सकता तो वह सर्वशक्तिमान कैसे?

(ख) जब वह अवतार लेता नहीं तो संसार में अवतार शब्द कैसा?

(ग) निराकार का समास करने से पता लगता है कि उसमें आकार मौजूद है।

निर्गतः आकारः यस्मात्सः निराकारः। जिससे आकार निकल गया वह निराकार हुआ। अब यहां पर पूछना यह है कि जब उसमें आकार है ही नहीं तो फिर निकला क्या? जब उसमें आकार होगा तभी निकलेगा? यदि आकार

मौजूद नहीं था तो निकलना वा दूर होना न बनेगा, यदि आकार दूर नहीं हुआ तो वह निराकार नहीं हो सकता। इससे सिद्ध है कि वह पहले साकार था।

प्रत्युत्तर—वाह जी, कालूरामजी, इतने दिनों तक पण्डिताई की फिर भी कोरे बाबा जी। मसल मशहूर है जन्म भर दिल्ली में रहे पर भाड़ ही झोंकते रहे। भला आप से कोई पूछे कि क्या वह अपने राज्य से किसी को बाहर निकाल सकता है? या अपना बाप बना सकता है? या अपने सरीखे २।४ ईश्वर निर्माण कर सकता है? तो आप क्या जवाब दीजियेगा। इसका उत्तर सिवाय "नहीं" के और क्या हो सकता है? तब क्या आप कहेंगे कि वह सर्वशक्तिमान् नहीं है? आप ने बच्चों सरीखे तर्क करके अपनी पण्डिताई का दीवाला ही निकाल डाला। सर्व शक्तिमान का वह अर्थ नहीं है जैसा आप ने किया है किन्तु सर्व शक्तिमान का अर्थ यह है कि वह विना किसी दूसरे की सहायता से काम करता है संसार के पदार्थों में जितनी शक्तियां देखी जाती हैं, सब उसी की शक्ति है। इसी को दर्शाने के लिये केनोपनिषद् की कथा है।

ख—अवतार शब्द अव उपसर्ग पूर्वक तृधातु से घञ् प्रत्यय करने से बना है। जब धातु मौजूद है तो शब्द बनेगा ही। अवतृ का अर्थ उतरना होता है। अवतार घाटका नाम पहले से मौजूद है। उसी को पौराणिकों ने ईश्वर के

उतरने पर लगा लिया। कल्पद्रुम यह काल्पनिक वृक्ष है इसकी सत्ता ही नहीं, पर नाम है। हुमा पक्षी का नाम लिया जाता है, पर इसका अभाव है।

इस लिये अवतार शब्द रहने से ईश्वर के अवतार की सिद्धि मान बैठना सिवाय मूर्खता के और क्या है।

ग—आपने निराकार का खूब अच्छा अर्थ निकाला है। आखिर पण्डित ठहरे न? आपने तो इस मूर्खता की बात को अखिलानन्द से सीखी है। पर दो के दोनों तर्कशास्त्र से अनभिज्ञ ही प्रतीत होते हैं। इन दोनों ने दर्शन शास्त्र को पढ़ा नहीं, यदि पढ़े होते तो बच्चों के समान मूर्खता की बातें मुहँ से न निकालते और न लिखते।

निष्क्रियाः निर्गुणाः गुणाः यह मुक्तावली का वचन है। इसका अर्थ है—गुणों में क्रिया और गुण नहीं होते। अब आपके समान ही कोई बुद्धिमान यह अर्थ करेः—निर्गता क्रिया येभ्यस्ते—निकल गई है क्रिया जिनसे। निर्गताः गुणाः येभ्यस्ते निर्गुणाः—निकल गये हैं गुण जिनसे। अब आप के तर्क से यह कहना पड़ेगा कि गुणो में क्रिया और गुण पहले मौजूद थे पीछे से निकल गये यदि क्रिया और गुण उसमें न होते तो क्या निकलता? पर आपके इस अर्थ को कौन मानेगा? है कोई सनातनी पण्डित आपके अर्थ का समर्थन करने वाला?

जिसमें गुण क्रिया होगी वह तो द्रव्य होगा। यदि गुण

में पहले क्रिया और गुण थे तो वह गुण न होकर द्रव्य रहेगा। द्रव्य कभी गुण नहीं हो सकता और न गुण द्रव्य हो सकता है किन्तु गुण द्रव्य में रहता है इसलिये आप का अर्थ बिल्कुल गलत है। यदि गुरु के पास शास्त्र पढ़े होते तो इस प्रकार अज्ञानियों के समान वितण्डावाद करके सत्य का हनन न करते पर आपने तो असत्य बोलने और लिखने के लिये कसम खाई है फिर पाखण्ड न करें तो कैसे बने! लेकिन अब दिमाग ठीक हो जायगा। क्योंकि दोनों की पण्डिताई का यहां दिवाला निकल गया।

प्रश्न—ईश्वर पृथ्वी अग्नि आदि सम्पूर्ण पदार्थों में व्यापक है। व्यापक का व्याप्य शरीर होता है इसलिये सब ईश्वर के शरीर हैं। आकाश विभु है पर वह भी साकार हो जाता है। आकाशात्तु विकुर्वाणात् इत्यादि मनु प्रमाण भी है। आकाशात् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी इत्यादि उपनिषद् प्रमाण हैं। साक्षात्प्रमाण में आप निम्न लिखित दलील देते हैं जब एक मनुष्य दौड़ता है तो उस के हृदयाकाश में कुछ हरकत पैदा होती है इसके बाद उस मनुष्य की स्वांस जल्दी जल्दी चलने लगती है। बस यह आकाश से वायु पैदा हो गया। कुछ देर के बाद शरीर में गर्मी आ जाती है यही वायु से अग्नि की उत्पत्ति है। फिर पसीना निकलता है यही अग्नि से जल का पैदा होना है। यही पसीना जमकर

मैल बन जाता है। यही जल से पृथिवी का होना है। जब निराकार आकाश वायु शब्द साकार हो जाते हैं तो परमात्मा इन जड़ तत्वों से भी कमज़ोर हैं जो साकार नहीं हो सकता।

उत्तर—यदि व्यापक होने के कारण पृथिवी अग्नि आदि पदार्थ अस्मदादिवत् ईश्वर के शरीर हैं तो अस्मदादिवत् ईश्वर को भी दुःख सुख का उपभोग आपको मानना ही पड़ेगा। क्या आप ऐसा मानने को तैयार हैं? यदि हां तो फिर ईश्वर और जीव में भेद ही न रहा।

जब पृथिवी उसका शरीर अस्मादादिवत् है तो पृथिवी के विकार से उत्पन्न चमार डोम भंगी आदि के शरीर को भी तो उसीका शरीर मानना पड़ेगा। फिर आप को इनकी पूजा अर्चा करने से क्यों इनकार है?

पूजा अर्चा तो दूर रहे छूते तक नहीं, मन्दिर में भी जाने नहीं देते। यदि आप का ऐसा सत्य सिद्धान्त होता तो ऐसा ढोंग क्यों रचते? हम आप के इस सिद्धान्त को तभी मानेंगे जब आप प्राणिमात्र को ईश्वर का रूप क्रियात्मक रूप में मानने लग जावें। वेदान्त दर्शन की सूक्ष्म बातों को अवतार में घटाने का प्रयत्न करना कितनी भारी धूर्तता है?

आपकी यह दलील इस लिये मान्य नहीं हो सकती कि यह स्वयं वेदान्त दर्शन के विरुद्ध है। परमात्मा सब में मौजूद रहते हुये भी सबसे पृथक् है। उसका दो रूप साकार

निराकार तो कालत्रय में भी नहीं हो सकता। देखिये वेदान्त दर्शन अ० ३ पाद २ सूत्र ११

न स्थान तो पिदरस्योभयलिंगं सर्वत्र हि इत्यादि।

स्थान भेद से भी परमात्मा के साकार निराकार दो रूप नहीं हो सकते क्योंकि श्रुतियों में सर्वत्र उसे निराकार ही कहा गया है। साकार प्रति पादक श्रुतियां गौण आलंकारिक हैं। इस पर पीछे भली भांति प्रकाश डाला गया है वहीं पर पाठक वृन्द देख लें।

आप के मतसे पृथिवी आकाश वायु जल अग्नि ये सब परमात्मा के यदि वास्तविक शरीर हैं तो फिर परमात्मा के खोजने व जानने की कौनसी आवश्यकता रही? जब साक्षात्कार परमात्मा को देख ही रहे हैं तो फिर ढूंढे किसे? राम लाल को गोपाल खोजता था, वह उसे काशी में मिल गया। रामलाल को गोपाल ने साक्षात् देख लिया अब फिर गोपाल को उसके लिये परेशान होने की बात न रही।

साकार स्वाभाविक मानने से इस अर्थ की संगति कैसे लगेगी कि वह आंख आदि पंचेन्द्रियों का विषय नहीं है सूक्ष्मदर्शी लोग प्रयत्न करने पर उसे मन से अनुभव करते हैं। क्योंकि उसे आंखसे नहीं देखते हैं।*

*नैवासौ चक्षुषा ग्राह्यो न च शिष्टै रपीन्द्रियैः मनसा तु प्रयत्नेन गृह्यते सूक्ष्म दर्शिभिः॥ अशब्द मस्पर्शमरूपमव्यय तथा रसं नित्य मगन्ध वच्चयत्। अनाद्यनन्त महतः परं ध्रुव निचाय्य तं मृत्यु मुखात्प्रमुच्यते॥

आपने जो "पृथिवी यस्य शरीरं अग्नि रस्य शरीरं" ये सब वाक्य दिये हैं उनका तात्पर्य्य केवल परमात्मा के उन उन वस्तुओं में व्यापकत्व में है। अस्मदादिवत् शरीर के नहीं

आप कहते हैं आकाश निराकार से साकार हो गया। क्या आप बतला सकते हैं कि उस साकार का रूप क्या है? जब उसका रूप ही नहीं तो साकार होजाने का प्रश्न उठाना सिवाय अज्ञानता के और क्या कहा जा सकता है।

यह कालूराम की नई फिलासाफी है। आकाश साकार होकर कहाँ है? इसे कालूराम ने नहीं बतलाया। शायद आप के दृष्टान्त का मतलब यह हो कि पृथिवी, आदि का उपादान कारण आकाश है इसलिये आकाश साकार हो गया। यदि आपका यह विचार हो तो आप गलती पर हैं। पृथिवी, अग्नि, वायु जल के परमाणु अलग अलग हैं। आकाश निराकार और उसका गुण शब्द भी निराकार ही है। किसी दर्शनकार ने आकाश को साकार माना ही नहीं। माने कहाँ से? कालूराम सरीखे अन्धे तो थे नहीं, न तो इनके समान उन में दुनियाँ को धोखा देने के लिये निजी स्वार्थ ही था। कालूराम के दिये हुये मनुप्रमाण का मतलब यह है कि पृथिव्यादि सम्पूर्ण कार्यतत्वों के परमाणु सृष्टि की साम्यावस्था में एकाकार हो रहे थे, विषमावस्था में वे कार्य में अलग अलग हो गये। इसका मतलब यह नहीं कि आकाश पृथिव्यादि का उपादान कारण है।

विक्रिया होने से वस्तु साकार हो जाती है यह कोई सर्व तन्त्र सिद्धान्त नहीं है। वायु भी तो विकार है इसका आकार क्या आप बतला सकते हैं ?

जो जीवको साकार कहता है उससे पूछना चाहिये कि कि उसका रूप बतलाओ । काला है या गोरा ? जीव भी निराकार ही है यह शरीर तो दुःख सुख भोगने के लिये परमात्मा ने इसे दिया है वह इस शरीर में बन्द है। उसे न किसी ने देखा और न देख सकता है क्योंकि वह प्राकृतिक नहीं है।

यदि कोई यह दलील दे कि जब जीवात्मा निराकार हो कर उपाधि में आ जाता है तो परमात्मा क्यों नहीं आ सकता ? इसका साधारण उत्तर यह है कि परमात्मा बन्धन से रहित है। वह बन्धन में आता ही नहीं।

यदि बन्धन में आ जावे तो फिर जीव से उसमें विशेषता क्या रहेगी ? इसी भ्रम को दूर करने के लिये वेदान्त दर्शन अ० ३ पाद २ सूत्र ११ से १६ तक में साकारत्व का खण्डन किया गया है।

प्रश्न—साकार धर्म निराकार धर्म से विरुद्ध धर्म है एक वस्तु में दो विरुद्ध धर्म नहीं रह सकते।

आपने उक्त प्रश्न करके अनेक श्रुतियों का अवतरण दिया है पर आपने शायद वेदान्त दर्शन पढ़ा नहीं है। यदि पढ़े होते तो गँवारों सरीखे ये प्रश्न नहीं उठाते। इसी प्रश्न

को हल करने के लिये तत्तु समन्वयात् यह वेदान्त का सूत्र है। श्रुतियों में विरोध नहीं है। आप के इस उक्त प्रश्न का उत्तर वेदान्त दर्शन अ० १ पाद २ सूत्र ११ में दिया गया है और इस पुस्तक में स्थान स्थान पर इसका प्रति पादन किया गया है।

प्रश्न—जब ईश्वर एक रस है फिर वह अवतार कैसे ले सकता है और यदि वह अवतार ले लेता है तो फिर एक रस मत समझो।

यह उक्त प्रश्न आप ही ने किया है और आप ही ने मन माना उत्तर दिया है। आपने लिखा है कि देखो जड़ तत्व अग्नि एक रस होने पर भी साकार हो जाती है।

आपने एक रस का अर्थ ही नहीं समझा। एक रस का अर्थ है सर्वत्र एक समान, विकार हीन। सिवाय परमात्मा के और पदार्थ एक रस। नहीं तो उसमें विकार नहीं है। अग्नि सर्वत्र एक रस नहीं। यदि ऐसा मानोगे तो उसे परमात्मा में भी व्यापक मानना पड़ेगा। इस लिये आप का उदाहरण ठीक नहीं।

अग्नि, वायु आदि सावयव पदार्थ होने से कार्य हैं। कार्य कभी भी एक रस नहीं रहता इसलिये आप का दृष्टान्त तर्क की अग्नि में नहीं ठहरता। परमात्मा निरवयव पदार्थ एक रस है उसमें परिवर्तन नहीं होता। इसलिये वह एक रस है।

प्रश्न—ईश्वर तो अवतार लेकर अयोध्या में आ गया फिर ईश्वर सर्वव्यापक कहां रहा। और स्थान तो विना ईश्वर का ही रहा इस उक्त प्रश्न का उत्तर आपने दिया है कि वायु को एक यन्त्र में भर लेने से सर्वत्र की वायु उसमें नहीं आ जाती यदि ऐसा हो जाय तो सब ही प्राणी मर जावें। क्योंकि प्राणी वायु के आधार से जीते हैं। जब वायु में इतनी शक्ति है तो क्या परमात्मा में वायु मात्र भी शक्ति नहीं है कि वह अवतार भी धरले और व्यापक भी रहे।

आप ने जो दृष्टान्त दिया है उससे पता चलता है कि आप वायु और अग्नि को सर्व व्यापक मानते हैं परन्तु यह न्याय शास्त्र के विरुद्ध है। अग्नि वायु सावयव पदार्थ सर्व देशीय नहीं हैं। अग्नि जल परमाणुओं तथा आत्मा में व्यापक नहीं है यह तार्किकों का स्वीकृत सिद्धान्त है। उसी प्रकार जल परमाणु भी आत्मा में नहीं।

अतः इनके आविर्भाव तिरोभाव से हमारे पक्षकी हानि नहीं क्योंकि ये सर्व व्यापक नहीं। सावयव पदार्थोंका आना जाना बन सकता है वायु फुटबालके थैलेमें अथवा सायकिलके ट्युबमें न था तब यंत्रद्वारा उसमें हवा भरी गई। क्या परमात्मा भी ऐसा ही है? यदि नहीं तो आपका दृष्टान्त ही गलत है। परमात्माके सर्व व्यापक कूटस्थ होने से उसका आना जाना बनही नहीं सकता अतः आप का प्रश्नोत्तर बालकों सरीखे अमान्य है।

इसके आगे आपने प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाणों को लेकर ईश्वर के साकारत्व विषय की सिद्धि में चोटी से एंडी तक जोर लगाया है पाठकों के मनोरंजनार्थ मैं यहां पर आप की बुद्धि का दिग्दर्शन करा देना उचित समझता हूं।

प्रथम आपने शब्द प्रमाण को लिया है। आप कहते हैं कि शब्द प्रमाण मान्य नहीं हो सकता क्योंकि ऋषियों के अंतः करण में जो ज्ञान पैदा हुआ वह ईश्वरीय ज्ञान था इसमें प्रमाण क्या? मनुष्य के अन्तः करण में अनेकानेक विचार उत्पन्न हुआ करते हैं उनमें कुछ सत्य होते हैं कुछ असत्य। आप के कहने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर के विषय में वेद प्रमाण यहां आप को मान्य नहीं है क्योंकि बिना इस को खण्डन किये आप आगे बढ़ नहीं सकते।

प्रत्यक्ष प्रमाण से परमात्मा की सिद्धि हो नहीं सकती क्योंकि वह निराकार है। जब प्रत्यक्ष से सिद्धि नहीं तो अनु ान से सिद्धि हो ही नहीं सकती क्योंकि बिना प्रत्यक्ष के अनुमान नहीं बनता। चाहे वह पूर्ववत् हो चाहे शेषवत्। सामान्यतोदृष्ट से भी उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसमें आप ने यह हेतु दिया है कि सामान्यतोदृष्ट अनुमान से साधर्म्य का ज्ञान होता है। जैसे हमने देखा कि मनुष्य को सींग नहीं होती तो अब मनुष्यमात्र में सींग का निषेध हो गया न कि गोमहिष्यादि जाति में। जो जो कार्य हमारे दृष्टि गोचर होते हैं वे सब साकार चैतन्य से बने हैं। अर्थात्

सब कार्य्यों के निमित्त कारण साकार चैतन्य हैं। सामान्यतो दृष्ट अनुमान द्वारा पृथिव्यादि कार्यों के कारण ईश्वर का ज्ञान होगा तो साकार चैतन्य का ज्ञान होगा तार्किकों को इस पर एक कारिका है।

कर्तृत्व सिद्धौ परमेश्वरस्य साकारसिद्धिः स्वत एव जाता। घटस्य कर्त्ता खलु कुम्भकारो कर्त्ता शरीरी न चाना शरीरी ॥

उत्तर—न्याय ने प्रत्यक्ष उपमान अनुमान और शब्द ये चार प्रमाणों को माना है। न तो किसी विद्वान ने, न किसी ऋषि मुनि ने न किसी आचार्य्य ने इस प्रमाण की अवहेलना की है पर कालूराम जी शब्द प्रमाण को नहीं मानते। आपके विचार से शब्द प्रमाण अमान्य है।

अर्थात् आप के विचार से आप्त पुरुष न तो व्यास हैं न जैमिनि न पतंजलि न तो कणाद न तो उपनिषद् और न तो वेद, क्योंकि संभव है इसमें ग़लती लिखा हो, परन्तु कालूराम जी जो दलील से कहदें वह ठीक हो जाय। परन्तु इनसे कोई पूछे कि आप इसका प्रमाण दो कि आप अपने माता पिता की औलाद हैं। देखिये इसमें आप्त प्रमाण लगाते हैं या और कोई तर्क देते हैं। भाई साहब अपनी कठ दलीलों से यदि शब्द प्रमाण की अवहेलना करोगे तो आप अपने बाप की सन्तान ही सिद्ध न हो सकेंगे। आप ब्राह्मण अपने को किस प्रमाण से कहते हैं क्या सबूत है कि

आप ब्राह्मण हैं? क्या सबूत है कि वेद ब्रह्मा से हुआ यदि आप शब्द प्रमाण नहीं मानते।

शब्द प्रमाण तो आप्तोपदेश है यह तो हर हालत में मानना ही पड़ेगा।

आपने साधारण मनुष्य और ऋषियों को एक तुला पर तौला है शाबास, स्वार्थी को अपने स्वार्थ के आगे दोष नहीं दिखलाई देता। आप यह भी मानते हैं कि ऋषि त्रिकालदर्शी होते हैं और यहां यह भी कहते हैं कि उनके ज्ञान का क्या ठेकाना झूठ भी हो सकता है। वाहरे सनातन धर्म के नेता! ऐसे नेताओं के कारण ही सनातन धर्म डूब रहा है।

ऋषियों को समाधि में जो ज्ञान होता है वह निभ्रान्त होता है हमारे आप सरीखे मनुष्यों से उस ज्ञान की तुलना नहीं की जा सकती। इस बात को सब लोग मानते हैं इस में किसी को कुछ एतराज़ नहीं। इसलिये उनके हृदय में प्रकट हुये वेद स्वतः प्रमाण हैं। इनके लिये तर्कादि अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है।

परमात्मा की सिद्धि एक तो शब्द प्रमाण से होती है। यदि आप वेद न मानें और अपने स्वार्थ के लिये समय पर इनकार कर जावें तो ऐसे वेदनिन्दक मनुष्य को उत्तर देने की आवश्यकता वेद से नहीं रह जाती जिसका निश्चित मत कुछ नहीं। वह तो मनुस्मृति अ० २ श्लोक ११ के अनुसार वेदनिन्दक नास्तिक है।

दूसरे परमात्मा की सिद्धि अनुमान प्रमाण से होती है। आपने जो तर्क दिया है वह हेत्वाभास के दोष से ग्रसित है। आप कहते हैं कि धूम को देखकर अग्नि का ज्ञान हो जाता है यदि यह सही है तो इसी दलील से क्या परमात्मा की सिद्धि न होगी, हम देखते हैं कि जो जो पदार्थ कार्य हैं वे सब किसी न किसी के बनाये हैं इसका हमें प्रत्यक्ष ज्ञान है इसलिये जिन जिन कार्यों को हम देखेंगे तब उनका कर्ता हमें किसी को अवश्य मानना पड़ेगा। जब जगत कार्य है तो इसका कर्ता अवश्य कोई है और वही ईश्वर है।

परमात्मा की सिद्धि में सामान्यतो दृष्ट अनुमान ही पर्याप्त है पर आप कहते हैं इससे भी उसकी सिद्धि नहीं हो सकती और क्या ही अच्छी दलील दी है कि सामान्यतो दृष्ट से साधर्म्य का ज्ञान होता है। धन्य हो बाबा, न्याय शास्त्र खूब पढ़ा, यह तो बतलाइये कि यदि सामान्यतो दृष्ट से साधर्म्य का ज्ञान होता है तो उपमान प्रमाण कहां जावेगा। वह कहां चरितार्थ होगा?

अपने जो कारिका दी है वह किसी प्रामाणिक ग्रन्थ का नहीं। आप ही सरीखे किसी विद्वान् ने उसकी रचना की है। कारिका बनाने वाले को इतना भी ज्ञान न था कि जब सृष्टि साम्यावस्था में थी तब विषमावस्था में लाने के लिये क्या किसी साकार की आवश्यकता थी? यह नहीं सोचा कि जो साकार होगा वह संयोग जन्य होगा जो संयोग जन्य

होगा वह नाशवान होगा । साकार देश काल से परिच्छिन्न होता है । यदि परमात्मा को साकार मानोगे तो उसे नाशवान देश-काल से परिच्छिन्न मानना पड़ेगा परन्तु परमात्मा देश काल से परिच्छिन्न नहीं है । कारिका वाले के पास इसका उत्तर क्या है और कालूराम जी के पास इसका क्या उत्तर है "न स्थानतोपिपरस्योभय लिंगं सर्वत्रहि ॥

वेदान्त का यह सूत्र आप की कारिका की मट्टी पलीद कर देता है । कहिये व्यास जी को मानें या तुम्हारे मूर्ख कारिका वाले को ?

कालूराम जी कहते हैं कि जब तक ईश्वर को साकार न माना जायगा तब तक शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान किसी भी प्रमाण से ईश्वर सिद्धि न हो सकेगी । यदि यह ठीक है तो बतलाओ आकाश काल दिक् की सिद्धि कैसे होगी ? क्योंकि ये भी तो निराकारही हैं । शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाण आप निराकार की सिद्धि में मानते नहीं तो फिर निराकार पदार्थों की सिद्धि कैसे होगी ?
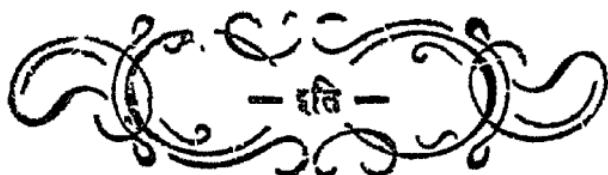
माला की प्रकाशित पुस्तकें।

सरल संस्कृत प्रवेशिका।

हमारे धर्म ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रहने तथा वर्तमान धार्मिक जागृति के कारण आज कल संस्कृत भाषा के अध्ययन की उत्कट इच्छा दिनों दिन बढ़ती जा रही है परन्तु सरल मार्गसे मातृभाषा की सहायता से संस्कृत में प्रवेश करने वाली अभी तक किसी उपयुक्त पुस्तक के न होने के कारण मुझे इस पुस्तक के रचने का विचार हुआ। अंग्रेजी में ऐसी पुस्तकें अनेक हैं और उन्हीं के मार्ग का मैंने अनुसरण किया है। मैं डाक्टर भण्डारकर, प्रो० आप्टे आदि विद्वानों का बड़ा ही कृतज्ञ हूं जिनके बतलाये हुए मार्ग में हमें इस पुस्तक के रचने में बड़ी ही सहायता दी। इस पुस्तक से सब श्रेणी के लोग लाभ उठा सकते हैं। जो लघुकौमुदी या कौमदी आदि व्याकरण सूत्रों को रटना नहीं चाहते, और शास्त्र पुराणादि को पढ़ना और समझना चाहते हैं अथवा जो कौमुदी आदि पढ़ना चाहते हैं या पढ़ रहे हैं, अथवा जो हाई स्कूल के विद्यार्थी संस्कृत को सेकण्ड लैंग्वेज लेकर पढ़ते हैं, इन सब श्रेणियों के लाभ के उद्देश्य से इस पुस्तक में प्रत्येक विषयों पर भली भांति प्रकाश डाला गया है।

संस्कृत भाषा का कुछ भी ज्ञान कराये बिना, आज कल

छोटे छोटे बालकों के हाथमें लघु कौमदी की पुस्तक पकड़ा दी जाती है जिसे बालक बिना समझे तोते की भाँति रटना आरंभ करते हैं जिससे लडके की शक्ति तथा समय व्यर्थ नष्ट होता है। यह परिपाटी संस्कृत पाठशालाओंमें बहुत दिनों से चली आरही है पर यह परिपाटी अत्यन्त दूषित और त्याज्य है। उससे लड़के घबड़ाते हैं और संस्कृत को अत्यन्त कठिन समझ छोड़ देते हैं।

मेरा अनुभव है कि इस पुस्तक के पढ़ने के बाद यदि विद्यार्थी कौमदी आदि पढ़ेंगे तो उनकी समस्त कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। सूत्रों को बड़ी आसानी से समझ जायेंगे। संस्कृत पढ़ाने वाले पण्डितों से सविनय निवेदन है कि वे एक बार स्वयं अनुभव करके देखें। जो लड़के केवल संस्कृत पढ़ते हैं वे इस पुस्तक को साल भर में भली भाँति समाप्त कर सकते हैं। मैंने कई विद्यार्थियों को पढ़ाकर देखा है पर विद्यार्थी कम से कम चौथी श्रेणी तक हिन्दी पढ़ा हो या कम से कम मातृ भाषा के व्याकरण का साधारण ज्ञान रखता हो इसके बाद यह काव्य ग्रन्थों को पढ़े अथवा यदि कौमुदी पढ़ना चाहता हो तो कौमुदी पढ़े, बालक की इच्छा पर निर्भर है। काव्य, तथा शास्त्रों में प्रवेश कराने के लिए संस्कृत व्याकरण की जितनी आवश्यकता है उस सबका समावेश इस पुस्तक में विस्तार पूर्वक हो गया है।

प्रत्येक मनुष्य तथा विद्यार्थी को इस पुस्तक से

लाभ उठाना चाहिये। मूल्य १।) रुपया, स्थायी ग्राहकों से ।।।≈) आना।

शुद्धि सनातन है।

आज कल कुछ स्वार्थी, शास्त्र पुराण ज्ञानहीन, रूढ़ि के पुजारी पण्डित कहा करते हैं कि शुद्धि तो आर्यों ने चलाई है पूर्वकाल में शुद्धि नहीं होती थी। उनकी आँख खोलने तथा भ्रान्त जनता के भ्रान्ति निवारण के लिये उक्त पुस्तक श्रुति-स्मृति-पुराण इतिहास ग्रन्थों के आधार से बड़ी ही योग्यता के साथ लिखी गई है, एक बार पढ़ जाने से फिर किसी प्रकार की शंका रह नहीं जाती। लेखक पण्डित जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ। मूल्य ।।।) आना, स्थायी ग्राहकों से ।।=) आना।

ऋषि दयानन्द का सत्य स्वरूप।

मुरादाबाद निवासी लाला जगन्नाथ दास के "दयानन्द हृदय" दयानन्द का कच्चा चिट्ठा और "दयानन्द की बुद्धि" नाम का इन तीन पुस्तकों का इसमें उत्तर दिया गया है।

लेखक पुराण का विशेषज्ञ है। अतः विशेषतः उत्तर पुराणों के ही श्लोकों से तथा आख्यायिकाओं से दिया गया है।

ग्रन्थ अच्छा है। छपाई और कागज रोचक, तथा सुन्दर है। आवरण पृष्ठ भी बढ़िया और रंगीन है। प्रत्येक शास्त्र प्रेमी को तथा पं० कालूराम आदि के पुस्तक पाठकों का इसे

अवश्य पढ़ना चाहिये ? समाज को तो अपने अपने उत्सवों पर अवश्य बांटना चाहिये। मूल्य ।=) स्थायी ग्राहकों से ।)॥

वेद और पशुयज्ञ।

एक ईसाई मतावलम्बी महाशय ने ऋषियों पर बैल, घोड़ा आदि खाने का कलङ्क लगाया है। इसका मुंह तोड़ उत्तर बड़े पुष्ट पुष्ट प्रमाणों से दिया गया है। धर्मपरायण हिन्दुओं के एक २ प्रति अपने घर में रखनी चाहिये। कीमत ।) आना स्थायी ग्राहकों से ≥)

सनातन वैदिक वर्ण व्यवस्था।

पुराण, शास्त्र स्मृति इतिहास तथा प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। आज तक किसीने इसके खण्डन का साहस नहीं किया। एक बार पढ़ लेने से वर्णव्यवस्था का रहस्य मालूम हो जायगा। मूल्य ।=) स्थायी ग्राहकों से ≠)

मिलने का पता—

चौधरी एण्ड सन्स,

लाजपतराय रोड, बनारस सिटी